

# विषय सूची

	पृष्ठ	पाठ	पृष्ठ
परिचय	१	१७	रानी चेतना ( अ ) ७३
मा शूर और तप शूर	२	१८	रानी चेतना ( आ ) ७७
तुंगानि के दुःख और		१९	वीर शासन जयति ८०
निरा कारण	८	२०	सम्यक् ज्ञान ८५
मेध्यात्व	१५	२१	सम्यक् ज्ञान के ८ अंग ८७
मेध्यात्व के पाप भद्र	१६	२२	ज्ञान के आठ भेद ९०
तप की सायकता	२३	२३	सम्यक् ज्ञान की महिमा ९४
शिक्षा क दोष	२७	२४	सार्व भाषना ९८
व्यवहार सम्यग्दर्शन	२८	२५	सम्यक् चारित्र्य १०३
सम्यक्त्व क आठ अंग	३८	२६	विश्व चारित्र्य या श्रावक
सम्यक् दृष्टि निभय क्षोभा			धर्म ११५
हे	४४	२७	व्यथ जीवन ११८
सम्यक् दृष्टि रभिमानता	४६	२८	लज कुश १२६
तीन मूढ़ता और छद्म		२९	गम लक्ष्मण और लज
अनायतन	५६		कुश का युद्ध १३०
सम्यक् दृष्टि क बाहरी		३०	मालहजारगभाषना १३७
चिह्न और विशेष गुण	५८	३१	दक्षिण भारत क प्रथम
सम्यग्दर्शन की महिमा	६०		सम्राट श्रीवाहुयलिसवामी १४२
प्रेम भाषना	६५	३२	सद्ग्रहस्थ १४६
वीर शि० चामु डराय	६७	३३	मंगलकामना १५२

श्री वीतरागाय नम

# धर्म शिक्षावली

पाचवा भाग

पाठ १

प्रार्थना

हे सर्वज्ञ वीर तिन दूबा, चरन शरण हम आते हैं ।  
जान अनंत गुणानार तुमको चरणन शीस नपात है ॥ १ ॥  
कथन सुन्दारा मत्र को प्यारा कही विरोध नहीं पाता ।  
अनुभव बाध अधिक जिनक हैं, उन पुरुषों के मन भाता ॥ २ ॥  
अज्ञान ज्ञान परित्र स्वरूपी, मारण तुमन ज्ञाया ।  
सही मार्ग हितकारी सब का, पूव श्रुति गण न गाया ॥ ३ ॥  
दुःखको भूल न जावे, इसी लिये जपनयन करें ।  
मंत्रवच्य का दृढतम पाल, सप्त व्यसद्ध का त्याग कर ॥ ४ ॥  
नीति माग पर नित्य चलें हम, योग्याहार विहार कर ।  
पालें योग्याहार सदा हम, शष्पाचार विहार कर ॥ ५ ॥  
धर्म मार्ग आर वैध माम से, देशाद्वार निचार करें ।

आप दचन हग इतमें पावें, मस्मिद्धात प्रगार करें ॥ ६ ॥  
 आ निन धर्म थड़े दिन दूनो, पंच आत नुति नित्य करें ।  
 मत्संगात का पारर ग्वागिन, कर्म फलर समूल हरे ॥ ७ ॥  
 फल भाव यह सभी हमारे, यही निवेदन करते हैं ।  
 "लाल" बाल गाल माल वीर पे चरनो में शिर परते हैं ॥

## प्रश्नावलि

- १—इस प्राथना म किन को उमह्यार किया गया है ?
- २—वीर भगवान पे कथन की क्या विशेषता है ?
- ३—हितकारी मार्ग कौनसा है ?
- ४—इस पविता में हमारे लिये फानर से हितकारी कतय सुनाये हैं ?
- ५—पंच आत आप ध मन सस्मिद्धात से क्या सप्तभते हो ।

## पाठ २

### क्षमाशूर और तपशूर

गोदू धमा महाराजा श्रेणिक एक दिन संध्या समय इन में  
 नौडा करके आ रह थ, उन्होंने मार्ग में एक ध्यान में लीन  
 इनपय जैनमुनि थरोधर महाराज को अचल गडे हुवे

देखा। राजा का दर्म द्वेष भडक उठा। शीघ्र ही उसने अपने पानसौ शिकारी कुत्ते मुनिराज के ऊपर छोड़ दिये। मुनिराज परम शान्त स्वभावी थे, आत्म ध्यान में लीन होने के कारण उन्हें यह भी जरा विचार न आया कि यह उपसर्ग कौन कर रहा है।

ज्योंही कुत्ते मुनिराज के पास पहुँचे, वे उन की ध्यान सई परम शान्त मुद्रा को देख चुप चाप खड़े हो गये, उन की सब क्रूरता भाग गई। आत्मीक प्रभाव भी खूब होता है, जैसे मंत्र कीलित सर्प शांत हो जाता वैसे ही वे कुत्ते भा शान्त हो गये, मुनिराज की प्रणतिष्णा दे कर उनके चरणों में बैठ गये।

महाराज श्रेणिक ने जब यह दृश्य देखा तो मारे क्रोध के वह लाल हो गये, मियान से तलवार सूत कर मुनि को मारने के लिये जा ही रहे थे कि एक भयकर मर्प फण को उठाये हुवे, कुंकार मारते हुवे उनकी नजर पडा इसे अशुभ शकुन समझ श्रेणिक ने भट से उस मर्प को मार डाला और बड़े क्रूर परिष्णाओं के साथ उस मरे हुवे सर्प को यशोधर मुनिराज के गले में टाल दिया।

मुनिराज ता ध्यातारूढ थे घीतरगो थे, उन्होंने जब अपने गले में मर्प पडा जाना तो उन्होंने अपना ध्यान और भी बढ़ा लिया और वैराग्य भावना तथा वैराग्य को बढ़वाने वाली वारद भावनाओं का चिन्तवन करना शुरू कर दिया।

इधर राजा श्रेणिक तीन दिन तरु तो इधर उधर अपने काम मे लगे रहे, चौथे दिन रात्रि के नमय जब जैन धर्म की

४ स्यात्वा शैली से देखने पर कोई भी मत अमत्य नहीं टहरता

कट्टर अज्ञानी रानी चेलना के महलम आय तो यह सब कैंतूहल रानी से कह सुनाया । यह मुनत ही रानी काप उठी, उसका हृदय दहल गया अपने गुरु मुनिराज पर घार चमर्ग जान अनक प्रकार शोक करने लगी, उसकी आँखा म तप टप आँसू गिरने लगे । इससे महाराज श्रेणिक का कठोर हृदय भी पमान गया, कहने लगे “प्रिय तूरच मात्र भी चिन्ता न कर साधुता यहाँ से कभी का चलता घना होगा और उसन उस सर्प को भी निकाल कर फेंक दिया होगा” ।

श्रेणिक के ऐसे बचन सुन चेलना ने कहा “महाराज ऐसा कहना आपका धर्म है, यदि वे मेर पवित्र निमन्थ गुरु हैं तो वे उस स्थान से डिगे नहीं होंगे आर ना ही उहोंन यह सर्प अपन गले से निकाल कर फेंका होगा । सुमेरु पयत भले ही चलाय मान हो जावे परन्तु वे धीर धीर तपस्वी साधु उपसग ध्यान पर लग भी विचलित नहीं होते हैं । हे नाथ समा गुण के धारी जैन मुनि प्रब्धी के समान अचल होते हैं और समुद्र व समान गभीर, वायु के समान निष्परिमह अग्नि के समान कम भसा करने वाले, आकाश के समान निर्लेप, जल के समान निमल चित के धारक, एव मेघ के समान परोपकारी हात हैं । आप निश्चास रखे जो गुरु परम ज्ञानी, परमध्यानी हट वैरागी हाने वे ही मर गुरु हैं । इन से निपरीत कायर, पाँग्रही मत तप आदि से शूच मर गुरु नहीं हा सकते । हे नाथ ! आपन बड़ा अन्ध किया जा रहा ही अपनी आत्मा को दुर्गति का पात्र बनाया ।

गन्त को यह जान कर बड़ा आश्चर्य हुआ और उसी समय रानी चेलना सहित रात्रि को मुनिराज के पास पहुँचे। देखते हैं कि मुनिराज वैसे ही ध्यानरूढ़ गूढे हैं जैसे कि चार दिन पहले रखे थे, गले में लम्बी तरह मरा हुआ सर्प पड़ा है, कीड़ियाँ शरीर पर चिमनी हुई हैं। यह देखते ही राजा के हृदय में एक दम भक्ति का समुद्र लहरा उठा। मुनिराज को देखते ही चेलना का शरीर भी रोमांचित हो आया, वह शीघ्र ही उनके पास आई, कण्ठ में गले से सर्प निकाल कर फेंक दिया और कीड़ियाँ सब यत्नाचार पूर्वक पोंछ कर साफ कर लीं। मुनिराज के शरीर को गर्म पानी से धोकर नम पर चदन का लेप कर दिया। रात्रि होने के कारण मुनिराज बोलने नहीं मीन से रहे। राजा और रानी दोनों आनन्द के साथ उनके सामने भूमि पर बैठ गये। मवेरा होते ही फिर रानी ने मुनिराज के चरणों का भक्ति भाव से पूजन किया, उनकी स्तुति की। फिर राजा और रानी दोनों मुनिराज को नमस्कार करके यथा स्थान बैठ गये।

जब मुनिराज का ध्यान खुला तो उन्होंने दोनों को समान रूप में "धर्म वृद्धि" आशीर्वाद दिया। मुनि महाराज ने अपनी परम भक्त रानी और वेषी राजा में कुछ भी भेद भाव न किया, दोनों को बराबर मममा। उस समय मुनिराज की उत्तम क्षमा को देखकर महाराज श्रेणिक बड़े लज्जित हुवे और अपने मन में बड़ा दुःख करने लगे। मुनिराज के इस शिष्ट वर्ताव से श्रेणिक मन ही मन में विचारने लगे हाय। मैं बड़ा पापी हूँ, मैंने ऐसे

घोर तपस्वी योगीश्वर के, मारने का प्रयत्न किया, विस्कार है मेरे जीवन का। मुनिराज अतरयामी थे, ज्ञान से उन्होंने राजा के मन की घात जान ली। कहने लगे "राजन तुम्हें अपने चित्त में किसी प्रकार का दुःख नहीं मानना चाहिये। जो शुभ अशुभ काम किया है उसका अच्छा बुरा फल अत्रयमेव भोगना पड़ता है।"

मुनिराज के शान्ति मय और हितकारी वचनों को मुनिरु महारान श्रेणिक को बड़ा आश्चर्य हुआ। इसी प्रकार अनेक प्रकार धम चवा राजा श्रेणिक ने मुनिराज से की। राजा के विचारों ने पलटा साया, इनके विचार की सीमा बढ़ गई, उन्हान साचा कितने ही, विषय लपटी कामी, कोधी अविचारी तथा ज्ञान ध्यान से शून्य वभी साधु वभी सच्चे भवण अर्थात् गुरु नहीं हो सकते। इस प्रकार विचार करते उनकी श्रद्धा जैन धर्म में पूर्ण रूप से हो गई। रानी चेलना सहित मन्तराज श्रेणिक ने मुनिराज को नमस्कार किया उनकी बारबार स्तुति करते हुवे राजा और रानी बड़े आनन्द के साथ राज महल की ओर चल दिये।

सम्राट श्रेणिक इस प्रकार महारानी चेलना सहित जन धर्म को पालते हुवे आनन्द पूर्वक अपने राज्य की सुव्यवस्था करते हुवे राज ग्रह नगर में बड़े ठाठ बाठ के साथ रहने लगे।

धन्य है यशोवर मुनिराज की इस उत्कृष्ट उत्तम क्षमा तथा त्याग और सह्य शीलता को, वास्तव में वह सच्चे साधु थे, वे यथाथ क्षमाशून तपशून थे जैसे कि जैन साधु हुवा कान हैं।

## प्रश्नावलि

- (१) राजा श्रेणिक ने श्री यशोधर मुनिराज पर शिकारी कुत्त क्यों छोड़े ?
- (२) उन कुत्तों ने मुनिराज को कोई हानि पहुंचाई या नहीं— यदि नहीं तो क्यों नहीं ?
- (३) राजा श्रेणिक ने मुनिराज के गले में सर्प क्यों डाला ? क्या मुनिराजने उस सर्प को अपने हाथ से निकाल देका ? यदि नहीं तो किसने और कब दूर किया ।
- (४) ध्यान खुलने के बाद मुनिराज ने राजा श्रेणिक को क्यों पहले आशीर्वाद दिया ?
- (५) आशीर्वाद देने के घाट राजा श्रेणिक के क्या परिणाम हुने और मुनिराज ने जन्मको कैसे संशोधित ?
- (६) निर्मल गुरु के कुद्ध विरोध लक्षण अपनी परिभाषा में समझाओ ?
- (७) उत्तम काम से अन्य क्या समझते हैं दृष्टान्त देकर बताओ ।
- (८) मुनिराज के आत्मबल का क्या प्रभाव श्रेणिक पर पड़ा और श्रेणिक ने क्या परिवर्तन हुवा ?



## चतुर्गति के दुख और उनका कारण

तीन लोक में चितने अनन्त जीव हैं मय ही दुःख से डरते हैं और सुख चाहते हैं। अनादि काल से यह ससारी जीव मोह रूपी मदिरा को पीकर बहोरा हा रहा ह और अपन शुद्ध चिदानन्द रूप निच स्वरूप को भूल हुवे, चतुर्गति रूप मसार में वृथा भ्रमण करता फिरता है। एव जीव का अनन्त समय तो निगोद में ही एकेन्द्रिय शरीर धारण कये हुवे ही चला जाता है। निगोद में बड़ी वेदना सहन करनी पड़ती है। वहाँ की बन्ना का अनुभव इसी घात से कर लिया जावे कि एक म्याँस मात्र में वहाँ अठारह बार जन्म मरण होता है।

निगोद में निकलने पर यह जीव पृथ्वी काय, जल काय, अग्नि काय, वायु काय और घनम्पति काय इन पाँच स्थावर पर्यायों को धारण करता है। एकेन्द्रिय जीवों में अकथनीय कष्ट हैं—जरा उन पर गौर कीचिये। मिट्टी को खोदते हैं, रौन्त हैं, चलाते हैं, कुन्ते हैं, उस पर अग्नि जलाते हैं, धूप की ताप से पृथ्वी कायिक जीव मर जाते हैं। एक चन क गान बराबर सचित मिट्टी में अन गिनती पृथ्वीकायिक जीव होते हैं—कुन्ते पीन्ते रौन्ते अग्नि से इन सब को महान कष्ट होता है, पराधीनपने से सब सहने पड़ते हैं, बचाव वे कर नहीं सकते, कही भाग नहीं सकते असमर्थ हैं। सचित जल को गर्म करन, मसलने, रौन्दने

आदि से महान कष्ट जल कायिक जीवों को उसी तरह होता है जैसे पृथ्वी कायिक जीवों को। जल कायिक जीव का शरीर भी बहुत छोटा होता है पानी की एक बूँद में अनगिनत जल कायिक जीव होते हैं। वायु कायिक जीव भीतरों की टहरों में गर्मा के मोकों में, जल की तीव्र वृष्टि से, पंखों से, हमारे दूधने चूने में टकरा कर धड़े कष्ट से मरते हैं। इनका शरीर भी बहुत सूक्ष्म होता है, एक हवा के मोके में अनगिनत वायुकायिक जीव होते हैं।

जलती हुई अग्नि पर पानी डाल कर बुझाने में मिट्टी डाल कर बुझाने में, तथा लाल तपते हुए लोह को घन से पीटते हुए अग्नि कायिक जीवों को स्पर्श का बहुत बड़ा दुःख होता है। इनका शरीर भी बहुत छोटा होता है। एक अग्नि की उठती हुई लौ में अनागनत अग्नि कायिक जीव होते हैं।

वनस्पति दो प्रकार की होती हैं, एक साधारण और दूसरी प्रत्येक। जिस वनस्पति का शरीर एक हो व उसके स्वामी बहुत से जीव हैं जो साथ-साथ मरे उनको साधारण वनस्पति कहते हैं। जिसका स्वामी एक ही जीव हो उसे प्रत्येक कहते हैं। गहुँदा आलू, मूली, गाजर आदि जमीन भूमि में फलने वाली तरकारियाँ साधारण होती हैं। अपनी मर्यादा को प्राप्त पत्ती कन्डी, नारंगी, पका आम, अनार, सेब, अमरुद आदि प्रत्येक वनस्पति है। इस वनस्पति कायिक जीवों को बड़ा कष्ट होता है। फोड़ पृष्ठों को काटता है, छालता है, पत्तों को

तोड़ता है नोचता है । फलो का काटता है साग को छोंकता है , पकाता है । घास को कतरता है पशुआ द्वारा या मनुष्यों द्वारा बड़ी निर्दयता के साथ इन वनस्पति काय क जाया का घोर कष्ट दिया जाता है । ये पराधीन हुवे = अममय हाने के कारण = नेत्र वेद नाशो को सहते हैं । और कष्ट से मरत है । ये सब इन के बंध हुवे पाप कर्मा का फल है ।

दो, त्रिय प्राणियों से चौ,न्द्रिय प्राणियों को त्रिकूलत्रय कहते हैं । कीड़े , मकोड़े , पतंगे , चींटी चींट आदि पशुआ और मनुष्यो द्वारा तथा हवा पानी अग्नि आदि द्वारा घार कष्ट पा कर मरते हैं । बड़े सबल जन्तु छोटी का शिकार कर अपना राना बनाते हैं । कितने ही भूख प्यास से , पानी की बपा से , आग जलने से , दीपरु की लौ से , नहाने धाने आदि के पानी से , बुझारने से , फटकारने से , कपडों से घाय पोंडने पर तड़प तड़प कर मरत हैं । कितने ही गाड़ी , मात्र , रेल आदि द्वारा रौंद जाने पर मर जाते हैं । भिड मस्त्रियों के अत्तो की आग से जला कर भस्म कर दिया जाता है । मन्डर्रा का मारन क तित्य प्रति नये = डग निकाले जाते हैं और रने द्वारा उन का मार दिया जाता है , कितने ही जीव जंतु मनुष्या द्वारा उन क अपन दैनिक व्यवहार के निमित्त मार दिये जाते हैं । पंचेन्द्रिय तिर्यचो के दुख नित्त प्रति आप अपनी आरयो से देखत ही हैं । पशु पक्षिया का कोह पालक नहीं उन को पेट भर कर भोजन पान नहीं मिलता-भूख प्यास गर्मी सर्दी की कितनी ही बाधाये उन्हें सहन करनी पडती

हैं। शिकारी लोग निद्रयता पूर्वक गाली या तीर से उन को मार डालते हैं। मासाहारी पका कर खाते हैं, घम के नाम पर कितने ही पशुओं को धलि के नाम से हाम कर दिया जाता है। बकरों, भेड़ों, मुर्गों आदि की कुरवानी की जाती है, मयादा से बाहर गोभा पशुओं पर लादा जाता है, जल्मी बैलों, घोड़ों, सन्चरों गधों को मार मार कर चलाया जाता है। यथा समय उन का चारा पानी भी नहीं दिया जाता। गर्मी सर्दी की बाधा उनको अनेक तरह से सहन करनी पड़ती है। कितन ही पक्षियों को तथा पशुओं को पिंजरा में बन्द कर दिया जाता और उनकी स्वतन्त्रता का नष्ट कर दिया जाता है। मछलियों का जल में से निसाल कर जमीन पर पटक दिया जाता है जहाँ वह तड़फ २ कर मर जाती है मनुष्य अपनी खुराक के लिये, अपनी आबाइयों के लिये, अपनी सजावट के लिये आर अपने भोग विलास के लिये कितने ही पशु पक्षियों का निर्वयता पूर्वक नित्य प्रति बिभ्वश कर डालता है। इस प्रकार पचेन्द्रिय तियचो को असहनीय दुःख सहन पड़ते हैं। नरक गति में नारकी जीवों को बहुत दिनों तक घोर दुःख भोगने पड़ते हैं। निरंतर परस्पर एक दूसरे से लड़ते रहते हैं उनकी भूख व्याम की बाधा कभी मिटती ही नहीं—भूख इतनी कड़ी होती है कि तीन लोक के अनाज खा लेने पर भी वह छप नहीं होती—व्यास इतनी होती है कि सारे समुद्रों के जल से भी शान्त नहीं हो पाती—नरकों की भूमि कर्कश और दुर्गंध मय होती है हवा छेदक और असह्य होती है। अधिक गर्मी और अधिक शीत की

१- जिस प्राणी को परिग्रह की मर्यादा नहीं, वह प्राणी सुगी नहीं।

घोर वेदना वह सहन करनी पड़ती है नारकियों का शरीर बहुत ही पुरुष और झरझराता होता है। उससे देखने मात्र से ग्लानि हो जाती है। नारकियों का शरीर वैक्यिक होता है जो छेदे जाने पर तथा भेदे जाने पर भी पारे की तरह फिर से मिल जाता है। आयु पूरी हुये बिना वे नरक से छूट नहीं सकते। नारकी पचेन्द्रिय सनी नपुंसक होते हैं, उनके पांचो इन्द्रिया वे भोगों की कृष्णा होती है, परन्तु उस कृष्णा की शांति के उपाय तथा साधन न होने से वे निरन्तर क्षोभित और क्षतापित रहने हैं। उनके परिणाम बड़े छोटे होते हैं। इस प्रकार नाना भाँति के कष्ट नरक गति में इस चीज को सहने पड़ते हैं।

मनुष्य गति के दुःख तो प्रगट ही हैं। माता के गर्भ में नौ महीने रहना पड़ता है, जहाँ घोर वेदनायें महता है, जन्म के समय में जो घोर कष्ट होता है वह रहने में नहीं आ सकता। शिशु अवस्था में असमर्थ होने के कारण खान पान यथा समय न मिलने पर बार-बार रोना पड़ता है, अज्ञान दशा होती है, अज्ञान के निमित्त थोड़ा सा भी दुःख बहुत ज्यादा मालूम पड़ता है, किसी के माता पिता मर जाते हैं तो दुःख, किसी के सन्तान नहीं होती है तो दुःख, सन्तान होकर मर जाती है तो दुःख, सन्तान जीवित रहती है आर छोटी हो जाती है तो दुःख किसी को राग सताता है, कोद मी के वियोग में तडपता, कोई दरिद्र से दुःखी है। किसी को इष्ट वियोग का दुःख है तो कोई अनिष्ट संयोग के मारे विलसता है। किसी को शारीरिक पीड़ा

है तो किसी को मानसिक चिन्ता सताती है। मनुष्य गति म  
 बड़ा दुःख तृष्णा का है। पाँचों इंद्रियों के विषय भोगों की तृष्णा  
 सताती रहता है। इच्छित पदार्थ याद नहीं मिलते हैं तो बड़ा कष्ट  
 होता है। “ दाम विना निर्धन दुःखी तृष्णा यथा धनवान् ” चाह  
 की चाह में बड़े-बड़े अन्न-पानी भी जला करते हैं। मुटापे में शरीर  
 शिथिल हो जाता है, इंद्रियाँ काम नहीं करती लोलुपता बढ़ जाती  
 है, पराधीन हो जाता है—बृद्ध अवस्था श्रद्धा मृतक समान है। इस  
 प्रकार मनुष्य गति म इस जीव को बड़े घोर दुःख सहन करने  
 पड़ते हैं।

देव गति म यद्यपि शारीरिक कष्ट नहीं हैं, परन्तु मानसिक  
 कष्ट बहुत भारी है। देवों में छापी उड़ी पदवियाँ होती हैं देवा  
 की विभूति सपदा कम ज्यादा होती है। नीचे पदवी वाले देव  
 ऊँचों को देख कर मन में बड़ा ईर्ष्या भाव रखते हैं, उन को देख  
 कर जला करते हैं। जब किसी देवी का मरण हो जाता है तब श्रेष्ठ  
 वियोग का दुःख होता है, जब किसी देव का अपना मरण काल  
 आता है तो वियोग का बड़ा दुःख होता है। अधिक भोग भोगते  
 हुए भी उनकी तृष्णा बढ़ती ही रहती है कभी अकाम निर्जग के  
 कारण भवन त्रिक।

( भवन वासी देव, ज्योतिषि देव, व्यंतर देव ) तीन प्रकार के  
 देवों में भी पुनर्जन्म ले लेता है तो बड़ा विषय चाह की अग्नि में  
 जला करता है और यदि कल्प वासी देव भी हो जाता है

तो वहा भी मम्यक् दशन पिना टु य पाता है । वहा म चल फिर स्वावर अ गत् एकेन्द्रिय हो जाता है ।

इस प्रकार इस ससारी जीव ने पाचों प्रकार के परिवर्तन (द्रव्य परिवर्तन , क्षेत्र परिवर्तन , काल परिवर्तन , भव परिवर्तन और भाव परिवर्तन ) अतत धार किये हैं । इस सब मस ८ भ्रमण का मूल कारण मिध्या दर्शन है ।

## प्रश्नावलि

- ( १ ) चारों गतियों के नाम बताओ ?
- ( २ ) जीव को निगोद में कैसी वेदना होती है ?
- ( ३ ) निगोद से निकल कर यह जीव किस पर्याय म जाता है
- ( ५ ) पृथ्वीकाय , जलकाय , अग्निकाय और पवनकाय के ची के टु स का वर्णन करो ।
- ( ५ ) वनस्पति कितने प्रकार की होती है ? प्रत्येक वनस्पति कि कहते हैं और साधारण वनस्पति किसे कहते हैं दृग्ग बताओ ?
- ( ६ ) वनस्पति काय के जीवों के टु सों का वर्णन करो ?
- ( ७ ) विकल त्रय किन्हें कहते हैं ?
- ( ८ ) तिर्यच गति के टु सों का वर्णन करो ?
- ( ९ ) नरक गति के टु सों का वर्णन करो ?
- ( १० ) नारकियो का शरीर कैसा होता है ?
- ( ११ ) मनुष्य गति के टु सों का वर्णन करो ?

- ( १० ) देवगति में जीव को क्या २ दुःख होते हैं ?
- ( ११ ) भवन त्रिक से तुम क्या समझते हो ?
- ( १२ ) पंच पग्निस्तन के नाम बताओ ?
- ( १५ ) संसार परिभ्रमण का मूल कारण क्या है ?

## मिथ्यात्व

संसारी जीव अज्ञान काल से मिथ्या दर्शन ज्ञान चारित्र्य के कारण इस चतुर्गति रूप संसार में भ्रमण करता चला आ रहा है हर एक गति में इसे नाना प्रकार के दुःख और कष्ट भोगने पड़ते हैं। जन्ममरण के अनेक दुःख सहता है। जीव, अजीव, आश्रय, बंध, सबर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्वों का इसे यथार्थ अज्ञान नहीं होता है। इन के स्वरूप का और का और उल्टा अज्ञान कर लेना ही मिथ्या दर्शन है—आत्मा का स्वरूप जानना देखना है आत्मा जड़रूप नहीं है, यह चैतन्य स्वरूप है। यह पुदराज आकाश धर्म अधर्म और काल इन पाचों द्रव्यों से सर्वथा भिन्न है, यह पाचों जड़रूप हैं। अज्ञानी जीव आत्मा को ऐसा न मान अपने शरीर को ही आत्मा समझता है। जाति में, कुल में, शरीर में, धन में, धाम में, गगर में, कुटुम्ब में अपना आपा माना करता है। वह माना करता है मैं सुखी हूँ मैं दुःखी



हूँ मैं गरीब हूँ मैं राना हूँ, यह रूपया पैसा मेरा है, यह मेरा घर है, यह मेरी गाय भैंस हैं, यह हाथी घोड़ा मोटर मेरी है, मैं बड़ा हूँ, मैं छोटा हूँ, यह स्त्री मेरी है, यह पुत्र मेरा है, अथवा मैं उल्लान हूँ, मैं निर्बल हूँ मैं कुम्प हूँ मैं सुन्दर हूँ मैं भूर्ग हूँ मैं चतुर हूँ, शरीर के भाग दोन का अपत्त मरण और शरीर के जन्म को अपना जन्म माना करता है। राग द्वेष, माध, मान, माया, लोभ जो नित प्रति अपनी आँखों के सामने दखने के जीवों को दुःख दे हैं उन्हीं का सेवन करते हुए मुख्य मानता है। मिथ्या दृष्टि पहने धार्य हुये शुभ कर्मों के फल भागन में रुचि और अशुभ कर्मों के भोगने में अरुचि करता है क्योंकि उस आत्म स्वरूप का ज्ञान ही नहीं है। अपने आत्मा के हित करने वाले पारणा ज्ञान और वैराग्य को अपने लिये दुर दारी समझता है।

मिथ्यादृष्टि जीव अपने आत्मा की शक्ति को खोकर अपनी इन्द्रियों को उन्हीं शक्तता है और उन्हीं चिन्ता रहित आत्म स्वरूप अविनाशी मोक्ष के मुर को छू डता है। ऐसी दृष्टी अज्ञान सहित जो कुछ साथ होता है जमी को कम देने वाला ज्ञान या मिथ्याज्ञान समझना चाहिये।

मिथ्या ज्ञान और मिथ्याज्ञान के साथ के पाँचों इंद्रिया के धिपय में प्रवृत्ति करण मिथ्याचरित्र है। इस प्रकार मिथ्याज्ञान मिथ्याज्ञान मिथ्याचरित्र जो स्वभाव से ही अनात्मिक काल से जीवों के घने रहते हैं, इनको अग्रहीत मिथ्या कहते हैं।

छोटे गुरु, छोट देव और छोट धर्म की सेवा करना मिथ्या दर्शन है।

**छोटे गुरु**—जो गुरु पायँड़ी, बेगधारी, इन्द्रिय विषय लम्बटी, घूत हैं, अज्ञानी हैं, परिग्रही हैं, आरंभी हैं, जो अपने को पूज्य धर्मात्मा मान अथ भोले भाले जीवों को ठगते हैं, उनसे अपनी पूजा कराते हैं, जो हिंसा में प्रवृत्ति कराने वाला उन्देश देते हैं, जो दुःख करते हैं, रागी, तृपी तथा दभी हैं, वे छु-गुरु हैं। ससार समुद्र में तैरने के लिये पत्थर की नाव के समान हैं।

**छोटे देव**—जो देव राती-द्वेषी हैं, अल्पज्ञ हैं, जो भ्रम व्यास, काम क्रोधादि सहित हैं, जो भय सहित हैं, शारणात्मिक को प्रहण करते हैं। जिनके द्वेष, चिन्ता, खेदादिक निरंतर बने रहते हैं, जो धामी, रागी होने के कारण निरंतर पराधीन रहते हैं, जो अल्पज्ञ हैं वे सच्चे देव नहीं हैं, छोट देव हैं। जो मूर्ख लोग ऐसे देवों की सेवा करते हैं, वे ससार समुद्र से पार नहीं हो पाते।

**छोटा धर्म**—जिन ० क्रियाओं के करने में रागद्वेष पैदा हो, अपने और दूसरों के परिणामों में संक्लेश होवे, जो साक्षान् ब्रह्म और स्थावर जीवों की हिंसा का कारण होवें, उन सब को छोटा धर्म समझना चाहिये। हिंसा-भय चरित्र का पालना छोटा धर्म है। जो ऐसे दुःधर्म का सेवन करते हैं, दुःख पाते हैं।

इस प्रकार ऊपर बताया हुआ छोट गुरु, छोट देव और छोटे धर्म का अन्वय करना गृहीत मिथ्यादर्शन है।

खोटे शास्त्र—जो शास्त्र एतन्त परसे दूषित है, अल्पज्ञ के कहे हुए हैं, रागी, ब्रेपी, अभिमानी, लोभी, दभी, कपटी, विषयो लंपटियों के रचे हुए हैं वे खोटे शास्त्र हैं। जिन शास्त्रों में पूर्वापर विरोध पाया जाता, है, जो वस्तु का यथार्थ स्वरूप न बताकर केवल आडंबर रूप, लोगो के चित्त को खुरा करने वाली असत्य वित्तथाओं का कहने वाला हो, जिसमें प्राणियों की हिंसारूप उपदेश दिया गया है, ऐसे खोटे शास्त्रों का पढ़ना दुख देने वाला मिथ्याज्ञान है। ये ही गृहीत मिथ्याज्ञान है।

अपनी नामवरी, रुपये पैसे के लाभ और अपनी पूजा प्रतिष्ठा की इच्छा रखते हुए अनेक प्रसार से अपने शरीर को तपाना, जीव और शरीर के भेद को न जानकर अच्य अघर्मरूप क्रियाएँ करके शरीर को क्षीण करना तथा इसी प्रकार की और अनेक क्रियाएँ करना सब गृहीत मिथ्या चारित्र है।

इस प्रकार कुगुरु, कुदेव, कुधर्म को सश मानना मिथ्यादर्शन है। संसार बढ़ानेवाले खोटे शास्त्रों का पढ़ना मिथ्याज्ञान है ज्ञान बिना शरीर को नाश करनेवाले हिंसामयी तप का करना मिथ्याचारित्र है। यह गृहीत मिथ्यात्व का स्वरूप समझन चाहिये।

संसार भ्रमण वा मूलभ्रमण मिथ्यात्व है। मिथ्यादृष्टि जीव पाषा में फसा रहता है, आत्म वितसाधन में प्रमादी रहता है तोत्र मोध, मान, माया, लोभ कपाय करता है। मन, वचन, काय को क्षोभित रखता है, संसार में अनेक कष्ट भोगता है। ऐस जान मिथ्यात्व वा संनवा त्याग करना ही श्रेष्ठ है।

## मिथ्यात्व के पांच भेद

पहले यता चुके हैं कि जीवान्तित्वो के यथार्थ स्वरूप का अज्ञान न होकर और २ रूप उल्टा अज्ञान होने को मिथ्यात्व कहते हैं। मिथ्यात्व भाव के कारण ससारी जीव में अनेक तरंग उठती हैं अर्थात् जीव के शान्त स्वभाव का नाश होता है। इसी कारण यह मिथ्यात्व कर्मा की उत्पत्ति का कारण है।

मिथ्यात्व पाँच प्रकार का होता है—एकान्त, विपरीत, विनय, संशय और अज्ञान।

एकान्त मिथ्यात्व—वस्तु में अनेक गुण होते हैं, जैसे दूध पीना शरीर को पुष्ट बनाता है, परन्तु धहुत से रोगो में हानि कारक भी है—इस हेतु से दूध लाभदायक भी है और हानि-कारक भी। एक मनुष्य जो २० वर्ष का है वह १० वर्ष के बालक से बड़ा और ५० वर्ष के मनुष्य से छोटा है। इस हेतु वह बड़ा भी है और छोटा भी। इस ही प्रकार वस्तु में अनेक गुण होते हैं, परन्तु संसार के अल्पज्ञ जीव वस्तु के एव ही गुण को लेकर वसी के अनुसार उस वस्तु का अज्ञान कर लेते हैं। इस ही का नाम एकान्त मिथ्यात्व है। श्रीवीतराग अरहंत भगवान् हमारा न कुछ बिगाड़ते हैं और न कुछ संवारते हैं, क्योंकि वह तो राग द्वेष रहित वीतराग हैं, परन्तु उनका ध्यान करने से तथा उनकी वीतरागता का चिंतन करने से हमारे परिणामों में वीतरागता आती है जिससे पाप कर्मा का नाश होता है। इस हेतु वह संसार दुःख को दूर करने वाले हैं, परन्तु उनको साक्षात् दुःख

को दूर करने वाला कर्ता परमेश्वरें मानना एकांत मिथ्यात्व है। स्नानादि शरीर शुद्धि और शुचि क्रियासे मनकी मलिनता दूर करने में सँसारी जीवों को सहायता मिलती है परन्तु स्नान करने या शुचि क्रिया ही कर लेना में धर्म मानना और मन की शुद्धि का कुछ भी विचार न करना एकान्त मिथ्यात्व है। इस प्रकार वस्तु में अनेक स्वभाव होते हुए उनमें से किसी एक रूप ही वस्तु का स्वभाव होने की हठ पकडना 'एका त मिथ्यात्व' है।

**विनय मिथ्यात्व**—सत्य और असत्य की परीक्षा न करके हरेक तत्व को ठीक मानकर भोले पन से विनय करना विनय मिथ्यात्व है। जैसे पूजने योग्य वीतराग सर्वज्ञ देव हैं, अलग-अलग रागी-द्वेषी देव पूजने योग्य नहीं हैं तो भी सरल भाव से, विवेक बिना दोनों की धरावर भक्ति करना विनय मिथ्यात्व है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि जिना गुणों के विचारों समस्त ही देव कुदेवों की समान विनय करना और सारे ही मत मतान्तरों को एक ही मानकर उनकी भक्ति करना विनय 'मिथ्यात्व' है।

**विपरीत मिथ्यात्व**—जिस में कभी धर्म हो ही नहीं सत्य धर्म को धम मान लेना विपरीत मिथ्यात्व है, जैसे हिंसा में धर्म मानना।

**संशय मिथ्यात्व**—सुतत्व और कुतत्व का निर्णय न करके संशय में पडा रहना। कौन ठीक है कौन ठीक नहीं है ऐसा एक तरफ निर्णय न करके धम में पडे रहना संशय मिथ्यात्व है। जैसे सम्यक् दर्शन, ज्ञान चारित्र्य रूप मोक्षमार्ग है या कि नहीं ?

**अज्ञान मिथ्यात्व** — तत्वों के जानने की चेष्टा न करके देखा देखी विमी भी तत्व को मान लेना "अज्ञान मिथ्यात्व" है। हिताहित की परीक्षा रहित श्रद्धान को "अज्ञान मिथ्यात्व" कहते हैं—जैसे वृक्षादि एकेन्द्रियजीवों को अपने हिताहित का कुछ भी ज्ञान नहीं है। बहुत से मनुष्य अपने साँसारिक कामों में ऐसे फँसे रहते हैं कि उन्हें धर्म का कुछ भी ज्ञान नहीं होता और धर्म की ओर में ऐसे ही अज्ञानी रहते हैं जैसे पशु या वृक्ष आदि, यह 'अज्ञान मिथ्यात्व' है।

यह मिथ्यात्व जीव का महान शत्रु है इसी से यह साँसारी जीव साँसार में परिश्रमण कर रहा है। हम रोज देखते हैं कि साँसारी जीव मिथ्यात्व के बश होकर रागी वृषी देवों की भक्ति पूजा करते हैं। अविवेकी, अभक्ष्यभक्षण करने वाले, टोगी, दम्भानी कुलिंगियों की तथा उनके माग की प्रशंसा करते हैं। अपने कार्य की सिद्धि के लिए देवी देवताओं की मोलत कयूलत करते हैं। ऐसा विचार करते हैं कि हमारे अमुक प्रयोजन की सिद्धि हो जावे तो छत्र चढ़ावें, चँवर चढ़ावें, मंदिर धनवाजें, बलि चढ़ावें चूरमा चढ़ावें, दीपक जलावें, बच्चों के बाल चोटी उतरवावें, यह सब तीव्र मिथ्यात्व है। ग्रहणमें सूतक मानना, साँकौति मानना, ग्रहों का दान दंडर अपने को सुख शांति का होना मानना, बाल्य रेत का डेर लगाकर पूजना, कु आ पूजना, पीपल पूजना, शीतला, मसाती आदि का पूजना, उनको घोक देना इत्यादि ये सब मिथ्यात्व हैं। इनमें से किसी भी मिथ्यादर्शन में फँसा हुआ प्राणी निर्मल सम्यक् दर्शन को नहीं प्राप्त कर सकता है।

घम का अज्ञान उसको नहीं हो पाता, मनुष्य जन्म को पृथा ही खो बैठता है। मिथ्यात्व के कारण प्राणी विषय भोगों की लालसा का मारा रात दिन विषय वासना की तृप्ति के फदे में फँसा रहता है, नाना प्रकार का अन्याय और धनोत्ति करता है अमर्त्य भोजन करता है, योग्य अयोग्य के विचार से रहित हो जाता है, हिंसादि पापोंको करते हुए सकृपाता नहीं। अपनी आत्मा का कल्याण चाहने वाले विवेकी पुरुषों को चादिये कि मिथ्यात्व का त्याग करें और सम्यक-दर्शन रूपी अमृत का पान करें। यह सच है—मिथ्यादृष्टि सदा दुःखी-सम्यादृष्टि सदा सुखी।

## प्रश्नावलि

- (१) मिथ्यात्व कितने प्रकार का होता है ? उनके नाम भी बताओ।
- (२) एकान्त मिथ्यात्व किसे कहते हैं दृष्टान्त देकर समझाओ।
- (३) विनय मिथ्यात्व क्या होता है ? दृष्टान्त सहित बताओ।
- (४) रौंशय मिथ्यात्व से आप क्या समझते हैं ? दृष्टान्त भी दो।
- (५) विपरीत मिथ्यात्व और अज्ञान मिथ्यात्व से तुम क्या समझते हो ? कोई दृष्टान्त भी दो।
- (६) मिथ्यात्व से क्या २ हानियाँ जीव को होती हैं ?
- (७) “मिथ्यादृष्टि सदा दुःखी-सम्यक दृष्टि सदासुखी” का अर्थ अपनी परिभाषा में समझाओ।

## जीवन की सार्थकता

लगभग अढ़ाई हजार वर्ष पहले की बात है। हमारे अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीर भगवान का कल्याणकारी विहार हो रहा था। उनका समवशरण राजगृह के पास विपुनाचल पर्वत पर आया था। सम्राट श्रेणिक भगवान के बड़े श्रद्धालु भक्त थे। श्री जिनेंद्र भगवान का शुभागमन सुनकर उन्होंने नगर में मंगल-भेरी दिलावाई और नगर निवासियों, सामंत तथा मंत्रियों से वैश्वित प्रभु की वन्दना तथा पूजा के लिए वन की ओर चल दिए। समवशरण में पहुँच कर भगवान के दर्राँ वन्दना करके वहाँ बैठे और अवसर पाकर भगवान महावीर से बड़ी विनय पूर्वक प्रश्न किया—नाथ ! आपने अपने महान त्याग और आदर्श अनुष्ठान से मनुष्य जीवन की सार्थकता का उपाय बता दिया है। आप पुरुषसिंह हैं, महावीर हैं, निषेन्य मार्ग के सर्वश्रेष्ठ पथिक हैं, परन्तु नाथ ! हम जैसे भीरु और कायर गृहस्थ इतने साहसी नहीं हैं कि एकदम मुनि अथवा आर्यिका हो जावे। अतएव नाथ ! हमें भी मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने के लिए कोई सुगम मार्ग बताइये।

महाराज श्रेणिक के पूछने पर भगवान की दिव्य ध्वनि हुई जिसे गौतम गणधर महाराज ने प्रदण किया और संसार के अ य जीवों के कल्याण के निमित्त द्वादशांग रूप में सम्बद्ध किया। गुरु परम्परा से भगवान की वह दिव्य वाणी आज भी



मिल रही है। श्री गौतम गणधर देव ने महाराज श्रेणिक के प्रश्न करने पर नीचे लिखी कथा पढ़ी।

‘भद्रपुर में जिनचन्द्र नाम का राजा राज्य करता था। वह बड़ा दानवीर और प्रतापी था। चिनदत्ता और जिनमतो नाम की उसकी दो रानियाँ थीं। चिनदत्ता के सूरदत्त और जिनमतो के जिनदत्त नाम के पुत्र हुए।

सूरदत्त यलपान और शस्त्र विद्या में विशेष निपुण था। जिनदत्त अस्त्र विद्या रस्य जानता था परन्तु भोगों से भ्रिक्त था। जिनचन्द्र सुप्तसे शासन कर रहा था कि अचानक म्लेच्छों ने उस पर आक्रमण कर दिया। राजा ने जिनदत्त को म्लेच्छों में मोरचा लेने के लिए भेजा, परन्तु म्लेच्छों ने उसकी सेना को नष्ट कर दिया। वह लौट कर भद्रपुर आया।

इस पर सूरदत्त म्लेच्छों को मार भगाने के लिए गया। वह पराक्रमी शूरवीर था। म्लेच्छ उसके सामने टिक नहीं सके- वह हार गए। सूरदत्त विजयी होकर भद्रपुर लौटा। राजा और प्रजाने उसका सम्मान किया। राजा ने उस युवराज बनाया। सब लोग कहने लगे कि सूरदत्त के समान कोई शूरवीर नहीं है।

विवेशी जिनदत्त से चुप न रहा गया, यह सुनकर वह कहने लगा कि म्लेच्छों के जीतने में क्या बहादुरी है? वही मनुष्य मथा शूरवीर है जो क्रोध, मान, माया, लोभ, मद और काम-रूपी द्वाद शत्रुआ को जीतता है, घोर परीपक्षों को समभाव

सहता है, वही महाशीलवान् पुरुष पुरुष अपनी आत्मा का हित करने के लिये सत्पर रहता है और लोक का कल्याण करता है। वह यथार्थ में शूर है।" निन्दत्त का यह कहना सूरदत्त के मन भागया। वह विरगो होगया, और श्रीधर मुनिराज के पास जाकर उसने निन्द-टीका लेली।

सूरदत्त ने जिस प्रकार-संग्राम-में अपने भुजबल और वीरता का परिचय देकर विजय प्राप्त की थी, वैसे ही उन्होंने राम मार्ग में घोर तप तपा और मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त किया— अपने आत्म कल्याण के लिये उन्होंने सम्यक् दशन, ज्ञान, चारित्र्य और तप की आराधना की और अपने मनुष्य जीवन को सार्थक बनाया।

श्रेष्ठिक ! मनुष्य जन्म पाने का यही सुफल है। दुनिया के अन्धे में सफलता पाना गृहस्थ का कर्तव्य है अवश्य, परन्तु मनुष्य जीवन की सार्थकता आत्म कल्याण करने में ही है। अपने अपनी आत्म शक्ति के अनुसार सम्यक् दशन, ज्ञान, चारित्र्यमई तनत्रय धर्म की आराधना करनी चाहिए। यह जल्दी नहीं कि मुनिपद धारण करके ही उसकी आराधना करो, घर में रहकर भी धर्म की आराधना हो सकती है, परन्तु विरक्त परिणाम होना चाहिए। अपने हित और अहित को पहचानने की दृष्टि होनी चाहिए। बिना विवेक के न मुनि और न गृहस्थ अपना कल्याण कर सकता है। भरत महाराज घर में ही वैरागी थे। धन और ऐश्वर्य में अन्धे नदी हुए थे। जीवन का ध्येय केवल रुपया समझा नही है—यह तारावान है—झाया है। झाया अपने आप

पीछे २ चलेगी, आप केवल धर्म की धाराधना कीजिये। कर्मवीर भी बनिये और धर्मवीर भी, सत्य है -

“जे कम्मे सूरु—ते धम्मे सूरु”

दो०—धर्म करत संसार-सुख, धर्म करत निवाण ।

धर्म-यथ साधे विना, नर तिर्यच ममान ॥

## प्रश्नावलि

- ( १ ) दिव्यध्वनि, द्वादशांग, और विहार से तुम क्या सम-  
मते हो ?
- ( २ ) सूरदत्त और जिनदत्त की कथा अपनी सरल भाषा  
में सुनाओ ।
- ( ३ ) सदा धर्मवीर कौन है ?
- ( ४ ) इस कथा से आप को क्या शिक्षा मिलती है ?
- ( ५ ) ‘जे कम्मे सूरु ते धम्मेसूरु’ इसका अर्थ समझाओ ?
- ( ६ ) अन्तिम दोहा सुनाओ और उसका अर्थ बताओ ।
- ( ७ ) मनुष्य जन्म सफल कैसे होता है ?

## ॥ शिक्षा के दोहे ॥

( बुधजन )

पाठ ७

एक धरण हू नित पदै, तो काटे अज्ञान ।  
 पनिहारी की नेजमो, सइज कटे पापान ॥ १ ॥  
 महाएज महावृत्त की, सुखदा शीतल छाये ।  
 सेवत फल भासे न तो, छाया तौ रह जाये ॥ २ ॥  
 मनुष्य जनम ले ना किया, धर्म न अर्थ न काम ।  
 सो कुच धज के कठ में, उपजे गये निवाम ॥ ३ ॥  
 दुष्ट मिलत ही साधु जन, नहीं दुष्ट बड़े जाय ।  
 चन्दम तरु को सर्प लग, बिप नहीं देत बनाय ॥ ४ ॥  
 दुर्जन सज्जन होत नहिं, राखो तीरथ बास ।  
 मेलो क्यों न कपूर मे, हींग न होय सुनास ॥ ५ ॥  
 दुष्ट कहै सुन चुप रहो, बोले बड़े दे हान ।  
 माटा मारै कीच में, छींटे लागै आन ॥ ६ ॥  
 रिपु समान पितु मात जो, पुत्र पढारै नाहिं ।  
 शोभा पावै नाहिं सो, राज-सभा के माँहि ॥ ७ ॥  
 को है सुत को है तिया, काको धन परिवार ।  
 आकर मिले सराय में, बिछुरेगे निरघार ॥ ८ ॥  
 पड़ी रहेगी सँपदा, घरी रहेगी काय ।

पीछे २ चलेगी, आप केवल धर्म की धाराधना कीजिये । कर्मव भी धनिये और धर्मवीर भी, सत्य है -

“जे कम्मे सूरु—ते धम्मे सूरु”

दो०—धर्म करत ससार-सुख, धर्म करत निवाण ।

धर्म-पथ साधे विना, नर तियंच समान ॥

## प्रश्नावलि

- ( १ ) दिव्यध्वनि, द्वादशांग, और विहार से तुम क्या समझते हो ?
- ( २ ) सूरदत्त और जिनदत्त की कथा अपनी सरल भाषा में सुनाओ ।
- ( ३ ) सच्चा धर्मवीर कौन है ?
- ( ४ ) इस कथा से आप को क्या शिक्षा मिलती है ?
- ( ५ ) “जे कम्मे सूरु ते धम्मेसूरु” इसका अर्थ समझाओ
- ( ६ ) अन्तिम दोहा सुनाओ और इसका अर्थ बताओ
- ( ७ ) मनुष्य जन्म सफल कैसे होता है ?

## ॥ शिक्षा के दोहे ॥

( बुधजन )

पाठ ७

एक घरण हू नित पढै, तो काटे अज्ञान ।  
 पनिहारी की नेजसो, सहज कटे पापान ॥ १ ॥  
 महाराज महावृक्ष की, सुपदा शीतल छाये ।  
 सेवत फल भासे न तो, छाया तौ रह जाये ॥ २ ॥  
 मनुख जनम ले ना किया, धर्म न अर्थ न काम ।  
 सो कुच अज के कठ में, उपजे गये निकाम ॥ ३ ॥  
 दुष्ट मिलत ही साधु जन, नहीं दुष्ट बड़े जाय ।  
 चन्दन तरु को सर्प लग, विष नहीं देत बनाय ॥ ४ ॥  
 दुर्जन सज्जन होत नहि, राखो तीरय वास ।  
 मेलो क्यो न कपूर में, हींग न होय सुवास ॥ ५ ॥  
 दुष्ट कदै सुन चुप रहो, बोले बड़े हे हान ।  
 भाटा मारै कीच में, झींटे लागै आन ॥ ६ ॥  
 रिपु समान पितु मात जो, पुत्र पत्नै नहि ।  
 शोभा पावै नहि सो, राज-सभा के माँहि ॥ ७ ॥  
 को है सुत को है तिया, काको घन परिवार ।  
 आकर मिले सराय में, बिछुरेगे निरघार ॥ ८ ॥  
 पड़ी रहेगी सँपदा, घरी रहेगी काय ।

छल बल कर क्याहु न बचे, काल रपट ले जाय ॥ ६ ॥

भूख सही दारिद्र सही, सही लोक अपकार ।

निन्द्य काम तुम मत करो, यहे म व को सार ॥ १० ॥

## प्रश्नावलि

- (१) इन दोहो के मनाने वाले कौन हैं ? उनके सौन्दर्य में आप क्या जानत हैं ।
- (२) विद्या पढ़ने के सम्बन्ध में जो दोहे हैं उनका अर्थ बताओ ।
- (३) सौंसार की अमारता बताने वाले दोहे सुनाओ और उनका अर्थ भी समझाओ ।
- (४) अंतिम और ३ ४ ५ ६ दाहा से क्या शिक्षा मिलती है ?

## व्यवहार सम्यग्दर्शन

जीव, अजीव, आस्रव, षय, सबर, निर्जर और मोक्ष इन सात तत्वों के अद्धान को व्यवहार सम्यग्दर्शन बताया है—इन सात तत्वों का स्वरूप धीरे भाग में आप पढ़ चुके हैं, प्रसन्न बरा यहाँ भी संक्षेप से कुछ बताना देना अनुचित न होगा ।

- (१) जीवतत्त्व—चेतना लक्षण जीव है—जीव तीन प्रकार के होते हैं बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा ।

(अ) बहिरात्मा—मिथ्यादृष्टि जीव जो शरीर आत्मा को एक ही गिनते हैं, जो तत्वों के स्वरूप को जानते ही नहीं, जिनकी इच्छाएँ बलवती होती जाती हैं, जो विषय चाह की अग्नि में रात दिन जलते रहते हैं, जो अपनी आत्म राक्ति को खो बैठते हैं और जो मोक्ष के अविनाशी अविचार सुख के खोजने के लिये कोई प्रयत्न ही नहीं करते बहिरात्मा हैं।

(आ) अन्तरात्मा—जो आत्मा को जानते हैं, आपा पर के भेद को जानते हैं और समझते हैं ऐसे भेद ज्ञानी सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा कहलाते हैं। ये अन्तरात्मा भी तीन प्रकार के होते हैं

(क) उत्तम अन्तरात्मा—अंतरंग और बहिरंग के २४ प्रकारके परिग्रह से रहित शुद्ध परिणामी आत्म ध्यानी मुनि उत्तम अन्तरात्मा हैं।

(ख) मध्यम अन्तरात्मा—देशव्रती गृहस्थ और छठे गुणस्थान वर्ती मुनि मध्य अन्तरात्मा है।

(ग) अधन्य अन्तरात्मा—अंतरहित चौथे गुणस्थान वर्ती सम्यग्दृष्टि जपय अंतरात्मा हैं।

(ङ) परमात्मा—अत्यंत विशुद्ध आत्मा को परमात्मा कहते हैं—परमात्मा के दो भेद हैं—एक सकल परमात्मा, दूसरे निकल परमात्मा, जिन्होंने चार घातिया कर्मा का नाश कर दिया है, जो लोकालोक को देखने वाले हैं ऐसे सर्वज्ञ, वीतराग परम हितोपदेशी आत्माओं को 'सकल परमात्मा' या अरहत कहते हैं।



आत्मा का दित सुख पाने में है, सुख उसे कहते हैं जिस में आकुलता अर्थात् किसी प्रकार की भी कोई चिन्ता न हो—माकुलता मोक्ष में नहीं है। ससार में तो सत्र ही जगह आकुलता पाई जाती है। इसलिये सुख के चाहने वालों को मोक्ष के मार्ग पर चलना चाहिए। मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्य रूप है। इन तीनों के स्वरूप का विचार दो तरह से करना चाहिए। एक तो निश्चय रत्नत्रय रूप में, यह तो ठीक ठीक सच्चा स्वरूप है। दूसरा व्यवहार रूप से यह व्यवहार मोक्षमार्ग निश्चय मोक्षमार्ग के पाने का कारण है।

पर अर्थात् अन्य द्रव्यों से आत्मा को जुदा जानकर शुद्ध आत्मा के सच्चे स्वरूप में भ्रष्टान करना निश्चय सम्यग्दर्शन है शुद्ध आत्मा के स्वरूप का विशेष ज्ञान होना निश्चय सम्यग्ज्ञान है।

शुद्ध आत्मा के स्वभाव में रमण करना अर्थात् एक चित्त हो लीन तथा तन्मय हो जाना निश्चय सम्यक्चारित्र्य है।

निश्चय मोक्षमार्ग को प्राप्त करने में व्यवहार मोक्षमार्ग कारण है। जिनके द्वारा निश्चय रत्नत्रय का लाभ हो उनके व्यवहार रत्नत्रय कहते हैं। जीव, अजीव, आश्रव, वायु, मंथर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्वों के भ्रष्टान को या इनमें पुण्य और पाप को और मिटाकर नौ पदार्थों के यथार्थ भ्रष्टान को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहते हैं। सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु के भ्रष्टान को भी सम्यग्दर्शन कहते हैं। जिने द्रव्यान के कहे हुए आगम के ज्ञान को व्यवहार सम्यग्ज्ञानक

हते हैं और अशुभ मार्ग की निवृत्ति तथा शुभ-मार्ग की प्रवृत्ति व्यवहार सम्यक्चारित्र्य है।

अब यहाँ पर पहले व्यवहार सम्यग्दर्शन का वर्णन करते हैं—

जिन्होंने ज्ञानावरणादि अष्ट द्रव्य कर्म, रागद्वेष क्रोधादि साव कर्म और शरीरादि नोकर्म इन तीनों प्रकार के कर्मों का त्याग कर दिया है, ज्ञान ही जिनका शरीर है जो लोक के अग्र भागमें स्थित है, जो अनन्त कालतक आत्मा के स्वाधीन, निराकुल सुख का निरन्तर अनुभव करते रहते हैं—ऐसे परमात्माओं को 'वृत्तवृत्तव' निवृत्त परमात्मा या सिद्ध कहते हैं।

इनमें से बहिरात्मपने का त्याग कर अन्तरात्मा बन सन्नेव दोनों प्रकार के परमात्मा की सेवा करना योग्य है। इससे ही निरन्तर आनन्द की प्राप्ति हो सकेगी।

(२) अजीवतत्व—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल पाँच चेतना रहित अजीव द्रव्य हैं। इनमें से पुद्गल मूर्तिक है क्योंकि इसमें स्पर्श, रस, वर्ण, गंध गुण पाये जाते हैं, बाकी चार द्रव्य धर्म, अधर्म, आकाश और काल अमूर्तिक हैं।

धर्मद्रव्य—जीव और पुद्गल को चलाने में उदासीन रूप से सहारी है। अधर्म-द्रव्य चलते हुए जीव और पुद्गल के टहरान में उदासीन रूप से सहारी होता है।

आकाश द्रव्य—इसमें जीवादि द्रव्यों को अवकाश देने की योग्यता होती है—इसके दो भेद हैं। लोकाकाश और अलोका

काश—घम, अघम, फाल, पुद्गल और जीव जिस हृद तक आकाश में पाये जाते हैं उसे लोमाकाश कहते हैं, उससे बाहर को अलोमाकाश कहते हैं।

कालद्रव्य—इसके दो भेद हैं—एक निश्चय काल और दूसरा व्यवहार काल।

निश्चयकाल—का काय सब द्रव्यों में परिवर्तन होने में सहायता करने का है।

समय, घड़ी, पहर, दिन, महीना और वर्ष आदि को व्यवहार काल कहते हैं।

इन छहों द्रव्यों में से जीव, पुद्गल, घर्म, अघम, आकाश यह पाँच तो बहुप्रदेशी होने के कारण पचास्तिकाय कहलाते हैं फाल के एक ही प्रदेश होता है इस कारण वह काय नहीं है।

[३] अस्वप्नतत्त्व—कर्म बगधाओं के लिचकर आत्मा के पास आने को तथा कर्मों के आने के कारण को आस्तव कहते हैं—भिकमाज्ञ, आधरति, प्रमाद योग और कर्माय कर्म आस्तव के प्रबल कारण हैं।

[४] वधतत्त्व—कर्मों के आत्मा के साथ बधने के कारण को तथा आये हुए कर्मों के आत्मा के साथ बध जाने को बन्ध तत्त्व कहते हैं।

[५] सवरतत्त्व—कर्मों के आन के कारण को तथा आते हुए कर्मों के रुक जाने को सवर कहते हैं।

(६) निर्जरातत्व—कर्मों के मड़ने के कारण को तथा कर्मा  
के मड़ने को निर्जरा कहते हैं।

(७) मोक्षतत्व—मर्ककर्म से छूट जाने के कारण को व  
आत्मा के कर्मा से पृथक् हो जाने को मोक्ष कहते हैं। यह  
सात जीव और अजीव अर्थात् जीव, पुद्गल, घर्म, अघर्म  
माकृश और बाल इन द्वाद्व द्रव्यो का समुदाय है। पुद्गलो में  
सूक्ष्म जाति की कर्म-वगणायें हैं या कर्म-रुक्त्व हैं, उन्हीं के  
अयोग से आत्मा अशुद्ध होता है। आस्रव और उषतत्व अशुद्धता  
के कारणो को बताते हैं। सेंवर अशुद्धता को रोकने का व  
निर्जरा अशुद्धता के दूर होने का उपाय बताते हैं। मोक्ष रघ  
रहित तथा शुद्ध अवस्था का नाम है। ऐसे सात तत्व बड़े उपयोगी  
हैं। इनके स्वरूप को ठीक से जाने बिना आत्मा का कल्याण नहीं  
हो सकता—इ ही का सच्चा श्रद्धान व्यवहार सम्यक्-दर्शन है।  
इन्हीं के मनन से निश्चय सम्यक्-दर्शन होता है। इसलिये  
ये निश्चय सम्पक्-दर्शन के होने में बहिरी निमित्त कारण हैं।  
प्रतरग निमित्त कारण अन-तानुबन्धी चार कपाय और मिथ्यात्व  
कर्म का उपशम होना या दव ता है।

इ ही सातों तत्वों में पाप पुण्य दोनो को और मिला देने  
के नौ पदार्थ हो जाते हैं।

ऊपर सात तत्वों का श्रद्धान व्यवहार सम्यक्-दर्शन बताया  
गया है। निर्दोष बाधारहित आगम के उपदेश बिना सप्ततत्वो का  
श्रद्धान कैसे हो सकता है, और निर्दोष आप्त अर्थात् देव के बिना

सम्यक्त्व का होना चाकर सम्यक्त्व है। चायोयशमिक सम्यक्त्व में यद्यपि सम्यक्त्व होता है, परन्तु मिथ्यात्व की क्लृप्त होने के कारण मल सहित होता है इसको वैक या चायिक सम्यक्त्व कहते हैं। इस सम्यक्त्व में चल, मल और अगाद ये तीन प्रकार के दोष होते हैं। सम्यक्-दर्शन मोक्ष-रूपी महल में चढ़ने की पहली सीढ़ी है, इसके बिना ज्ञान और चारित्र्य सम्यक्पन को प्राप्त नहीं होते। जैसे भी बने राज्य स्वाध्याय द्वारा अथवा सत्संगति द्वारा सचे देव, राज्य, गुद का तथा सात तत्वों का स्वरूप समझकर सम्यक्-दर्शन रूपी रत्न से अपने आत्मा को पवित्र करना चाहिये।

### छप्पय छद्

छद्दों द्रव्य नव तत्व, भेद जाके सप जानै।  
 दोष अठारह रहित, देव ताको परमानें ॥  
 संयम सहित सुसाधु, होय निरभय विरागी।  
 मति अविरोधी प्रथ, नाहि मानें परत्यागी ॥  
 वर केवल भाषित धर्म घर, गुणधानक वूर्म मरम।  
 भैया निहार व्यवहार यह सम्यक्-लक्षण जिनवरम ॥



### प्रश्नोत्तर

- (१) सम्यक्-दर्शन किसे कहते हैं ?
- (२) व्यवहार सम्यक्-दर्शन से तुम क्या समझते हो ?
- (३) तत्व कितने हैं ? उनके नाम बताओ—प्रत्येक का

स्वरूप भी समझाओ ।

- (४) आत्मा कै प्रकार की होती हैं ?
- (५) बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा का स्वरूप समझाओ ।
- (६) परमात्मा के कितने भेद हैं, और कौन २ से ?
- (७) व्यवहार सम्यक् दर्शन और निश्चय सम्यक् दर्शन में क्या भेद है ?
- (८) व्यवहार सम्यक् ज्ञान और निश्चय सम्यक् ज्ञान में क्या अन्तर है ?
- (९) व्यवहार सम्यक् चारित्र और निश्चय सम्यक् चारित्र में क्या अन्तर है ?
- (१०) व्यवहार मोक्षमार्ग और निश्चय मोक्षमार्ग में क्या अन्तर है ?
- (११) द्रव्य कितने हैं ? उनके नाम बताओ और सँक्षेप में प्रत्येक का स्वरूप समझाओ ।
- (१२) व्यवहार और निश्चय काल में क्या अन्तर है ?
- (१३) सच्चा देव किसे कहते हैं ?
- (१४) सच्चे गुरु के लक्षण बताओ ?
- (१५) सच्चा शास्त्र किसे कहते हैं ?
- (१६) सम्यक्त्व के प्रकार का होता है ?
- (१७) उपशम सम्यक्त्व, शायिक सम्यक्त्व और शायो-पराभिक सम्यक्त्व से तुम क्या समझने हो ?

३८ और उसे गुला देने से बढ़कर दूसरी कोई बुराई भी नहीं है।

(१८) चल, मल और अगाढ़ दोष क्या होते हैं ?

(१९) द्रव्य कितने हैं, उनके नाम बताओ। प्रत्येक का स्वरूप समझाओ।

(२०) अस्त्रिकाय किसे कहते हैं। कौन २ द्रव्य अस्त्रिकाय हैं और कौन कौन नहीं ?



### सम्यक्त्व के आठ अङ्ग

जैम शरीर के आठ अङ्ग होते हैं—मस्तक, पेट, पीठ, दो भुजायें, दो टाँगें, एक कमर। यदि इनको जुदा जुदा कर दिया जावे तो शरीर नहीं रहता, इसी तरह सम्यक्त्व के आठ अङ्ग होते हैं, यदि ये न हों तो सम्यक्त्व पूरा नहीं होता।

(१) नि शक्ति अङ्ग—जिन भगवान के कहे बचनों में सशय न करना नि शक्ति अङ्ग है। जिन सात तत्वों की श्रद्धा करके सम्यक्त्वी हुआ है उन पर कभी शंका नहीं लाना—जो जानने योग्य बातें अपनी समझ में नहीं आवें और चिन्तागम में बसाई गई हैं, उन पर सम्यक्त्वी अग्रहान नहीं करता, उनको विशेष ज्ञानी से पूछने और समझने का उद्यम करता है। सम्यक्त्व दृष्टि निर्भय होता है, वह अपने अज्ञान में सदैव दृढ़ और निश्चल रहता है। सात भय ये हैं—इसलोक भय, परलोक भय, वेदना भय, अरक्षाभय, अगुप्ति भय, अकस्मात् भय और मरण भय।

(2) निःकामचित्त अग-धर्म मन्दर इन्हें पालन करने वाला

जनित सुखो की इच्छा नहीं करता। मनुष्य को और भोगो को पारधीन, सुख को प्राप्त करने वाला, तृष्णा को बढाने वाला करने वाला समझता है।

(3) निर्विचिकित्ता-मुनिराज इन्हें पालन करने वाला

को मैला देख कर घृणा नहीं करता। जीव को दुरी दरिद्री, अपवित्र देख कर उस से ग्लानि नहीं करता है। कर्म जनित है, मंसार की अपवित्र देखकर घृणा नहीं करता। यही स्वभाव ही ऐसा है, इन में देखकर उनसे घृणा नहीं करता प्रेरणा करता है, उनके लिये साधन इस अग के पालन करने वाला हीन नहीं मारता, अपना प्रार्थना नहीं समझता, विचारता है कि सब कर्म जनित है। वास्तव में उनमें कोई भेद द्रव्य-दृष्टि से नहीं प्राणियों पर दया भाव रख करता है। रोगियों की सेवा के उठाने में ग्लानि नहीं करता है।



लिये भरसक प्रयत्न करता है। जिनके निर्बिचिक्रिया अंग हैं उसी के दया है, उसी के अहिंसा है, उसी के चारमत्य है और उसी के वैयानृत्य होता है।

४) अमूढ-दृष्टि अंग—सोटे रर तत्व की पहचान कर मूढ़ता की ओर नहीं जाना अमूढ-दृष्टि अंग है। सम्यक्-दृष्टि के मोचे, बिना समझे, बिना परीक्षा किये अंधे की तरह लोगों की देखा देखी, मिध्यत्व के बढ़ाने वाले निरर्थक क्रियाओं को धर्म मान कर नहीं पालता है। प्रत्येक धर्म क्रिया को ज्ञान पूरक विचार कर ही करता है, जो रत्नत्रय के सावर काय हैं, उन्हीं को करता है। मूढ़ बुद्धि को त्रिभुक्त त्याग देता है। लोभ से, भय से, आशा से तथा लज्जा से किसी प्रकार भी कुदेव, कुगुरु, कुधर्म तथा उनके मानने वालों को भक्ति भाव से प्रणाम नहीं करना, उन ही विनय और प्रशंसा नहीं करता।

(५) उपगूहन अंग—पणये दोषों को ढाँकना उपगूहन है। यदि किसी समय में किसी धर्मात्मा पुरुष से उसके अज्ञान में या उसकी कमजोरी से कोई दोष बन जाता है तो सम्यक् दृष्टि इस रयात् से कि यदि यह दोष प्रगट हो गया तो धर्म की निन्दा होगी, धर्मात्माओं को लोग दूषण लगावेंगे, प्रभु के निर्दोष भाग की निन्दा होगी, धर्म से सच्ची प्रीति रखते हुए धर्म को अपवाद से बचाने के लिये उसके दोष को छिपाता है। ऐसी दशा में करुणा बुद्धि धारण कर उपद्रव यथा योग्य सुचार-करना ही अपना कर्तव्य समझता है।

(६) स्थितिकरण अग—किसी समय में यदि कोई घर्मात्मा खोटी सगति से, रोग के कारण से, दरिद्रता से मिथ्या उपदेश से या अन्य किसी कारण से घर्म से गिरता हो तो घर्म प्रेमी सम्यक्-दृष्टि उसको जैसे भी बने घर्म में स्थिर कर देता है, यह स्थितिकरण अग है। इस अंग का पालक अपने आत्मा को सदा घर्म में स्थिर करता रहता है तथा दूसरों को घर्ममग में स्थिर रहने की प्रेरणा करता रहता है।

७ वात्सल्य अग—जैसे माऊ अपने बच्चे में प्रीति करती है, वैसी घर्मात्मा से प्रीति करना वात्सल्य अग है। जिसके अहिंसा में प्रीति होती है, जो सत्य और सत्यवादियों का उपासक है, जिसको सधे घर्म से प्रेम है, जो पर-धन और पर-श्री की लालसा नहीं रखता है वही वात्सल्य होता है। जिसके हृदय में घर्म और घर्मात्माओं के प्रति अनुराग है, जो त्यागी, तपस्वी, सन्यासी घर्मात्माओं के साथ बड़े आदर पूर्वक व्यवहार करता है उस के वात्सल्य होता है। इस अग का पालन करने वाला सम्यक्-दृष्टि अन्य घर्म वालों से द्वेष नहीं करता है। उन पर भी दया भाव रखता है और उनके प्रति मध्यस्थ रहता है। किसी प्रकार भी उनसे शत्रुता का भाव नहीं करता है, उनका विगाड़ नहीं चाहता, उनके घर्म स्थान, देवालय, मठ आदि को नष्ट भ्रष्ट नहीं करना चाहता, विचारता है कि जिसको जैसा सम्यक् या मिथ्या उपदेश मिलता है वैसी ही उसको प्रवृत्ति हुआ करती है। समस्त प्राणियों के लिये उसके भैत्री भाव होता

है, उसको किसी से पैर नहीं होता, गुणवाना के लिये उसके दिल में हृष का भाव होता है, दीन दुग्धी जीवा के लिये उसके हृदय में कष्टता होती है और विराधिया की ओर वह मध्यस्थ रहता है। इस अंग का धारक, धर्म और धर्मात्माओं के प्रति प्रेम भाव रखत हुए उनके दुखों को मिटाने का भरसक प्रयत्न और उद्यम किया करता है।

**प्रभावना अंग**—जिस प्रकार भी घने जैनधर्म की चमत्ति करना आर ऐसे कार्य करना कि जिनके करने से संसार के मय जीवों पर धर्म का प्रभाव पड़े।

जैनधर्म की प्रभावना दान देने से, घोर दुर्द्धर्ष तपश्चरण करने से, शील सयम पालने से, निर्लाभता से, विनय से, हृष तथा उत्साह पूर्वक जिनैन्द्र प्रभु के अभिषेक-पूजन करने से तथा तत्वों का प्रचार करने से, साधारण जनता में ज्ञान प्रचार द्वारा अज्ञान अंधकार को मिटा देने से, परोपकार से बढ़ती है, सम्यक दृष्टि इन सब कारणों को जुटाने के लिये भरसक प्रयत्न किया करता है, वह चाहता है कि जैनियों के निर्मल आचरण, दान, तप, शील भावना, विनय, क्षमा, दया, अहिंसा, भक्ति, अज्ञान, उनकी चित्तता, निष्कपटता, निष्पक्षता, निर्भीकता, मैत्रीभाव, सहनशीलता, मरुणा और परोपकार भाव इत्यादि गुणों को देख कर दूसरे धर्म वाले भी प्रशंसा करें और कहें कि धर्म्य है इनके धर्म को, इनके आचरण को, इनके स्वार्थ-त्याग को, प्राण जाते हुए भी यह अपने

नियम धर्म को भंग नहीं करते, इसका जीवन अनुकरणीय है। इसी का नाम प्रभावना है। इस धर्म का पालक धर्म की उत्पत्ति करने का निरंतर प्रयत्न करने अपना मुख्य कर्तव्य समझता है, जिस प्रकार भी धर्म और भाषण सत्य धर्म में प्रभावित होकर सत्य को प्रत्यक्ष करने का उद्यम करता करता रहता है।

इन आठों अर्थों के समुदाय का नाम है सम्यक-दर्शन है। अर्थों अर्थों से जुड़ा नहीं हुआ करता, प्रज्ञा के समूह की एकता ही तो अर्थों है। इन गुणों से अर्थों आठ दोष हैं, जो २५ दोषों में गर्भित हैं। उन्हें दूर करके सम्यक-दर्शन को निर्मल बनाना चाहिये।

### सूत्र ३१

धर्म म न संशय शुभ कर्म छ ही न ह-द्धा,  
 अशुभ को देख न गिलाना धर्म चित्त में।  
 सौंकी दृष्टि रखें काह प्रणी धर्म शोध धार्य,  
 चंचलता भानि धिनि ठार्य शोध चित्त में ॥  
 प्यार निजरूप से उच्छ्राय ही तरंग उठे,  
 एह आठों अर्थ लक्ष्य को धर्म चित्त में।  
 ताहि समकित को धर्म धर्म समकित-वर्त,  
 वेही मोक्ष पावें औ न धर्म धर्म इत में ॥

### प्रश्नावलि

- (१) सम्यक्त्व के कितने अङ्ग होते हैं ? नाम बताओ ।
- (२) निरांकित अङ्ग किसे कहते हैं ?
- (३) निरांकित अङ्ग से आप क्या समझते हैं ?
- (४) निर्विचिच्छिन्ना अङ्ग से आप क्या समझते हैं ?
- (५) अमूढदृष्टि तथा उग्रगूहन अङ्ग का स्वरूप समझाओ ?
- (६) स्थिति करण से आप क्या समझते हैं ?
- (७) वास्तव्य अङ्ग पर एक छोटा सा लक्ष्य लिखो ।
- (८) प्रभावना किसे कहते हैं ? सही प्रभावना काहे में है ?
- (९) सही प्रभावना के कुछ उदाहरण सुनाओ ।

### सम्यक्दृष्टि निर्भय होता है

सम्यक्दृष्टि निर्भय होता है। जिसको तत्त्वों में पूर्ण ध्यान होता है और संसार के सब प्रकार के दुःख सुख को कम जनित जानता है, और सासारिक दुःख सुख को अपने से पर समझता है तो उसको भय ही किस बात का होवे, उसको भय तो तब हो, जब पर पक्षार्थी को अपना समझता हो, वह तो अपने ध्यान में अडिग होता है। एक सच्चे वीर योद्धा की तरह वह कठिनाइयों को वीरता हुआ अपने ध्येय की ओर आगे आगे बढ़ता चला जाता है, अपने निश्चित मार्ग से पीछे हटता नहीं भय सात प्रकार का होता है।—

इमलोक का भय—सम्यक्दृष्टि के इस लोक का काई भय नहीं होता। वह घन संपदा, शरीर, स्त्री, पुत्र, धन धार

कि जो उस धर्म सिन्धु मुनीश्वर के घरणो में लीन रहते हैं । ४५

राय आदिक को अपने से बिलकुल जुदा जानता और देखता है—वह समझता है कि कर्म के उदय से इनका संयोग है, और कर्म के उदय से ही इनका वियोग भी अवश्य होगा । जो जन्मता है उसका नाश भी अवश्य होता है । वह तो अपने को समझता है मैं ज्ञान स्वरूप हूँ, अविनाशी हूँ, अजर अमर हूँ, शुद्ध चेतना स्वभाव का धारक हूँ । उमका ऐसा हृदय अज्ञान है, वह अपने निश्चिन्त मार्ग पर एक सच योद्धा की तरह हटा रहता है ।

परलोक-भय—सम्यक्-दृष्टि के इस बात का भय नहीं होता कि मरने के बाद मेरा क्या बनेगा, मैं कहीं किस क्षेत्र में जन्म लूँगा, दुःखी होऊँगा या सुखी—वह अपने किये हुए कर्मों का फल भोगने से घबराता नहीं । वह विपद्यो का लोभुषी नहीं होता । अपने कर्मद्वय पर सतोष रखता हुआ परलोक की चिन्ताओं का जरा सा भी भय अपने दिल में नहीं मानता ।

मरण-भय—सम्यक्-दृष्टि मृत्यु से डरता नहीं वह तो मरण को चोला बदलने के समान जानता है, यह आत्मा को अजर अमर मानता है । शरीर जड़ है, अवश्य ही एक रोज यह शरीर मुझ से छूटगा, शरीर मुझ से भिन्न है, मैं चैतन्य अविनाशी हूँ । मृत्यु का सुभावला समताभाव के साथ करने के लिये एक वीर योद्धा की तरह हर समय तय्यार रहता है । मौत के डर के मारे वह अपने नियत मार्ग से नहीं चिगता ।

वेदना भय—रोग हो जाने पर सम्यक्-दृष्टि घबराता नहीं,

उस से डरता नहीं—समताभाव के साथ, कम पी निजरा का हेतु जान, गोग की वेदना को महन करता है—यथायोग्य इलाज करता करता है । उइ निरोग रहने का उपाय करता है, अपना खान पान आहार बिहार, निद्रा आदि क्रियाओं को बड़ी सावधानता से करता है । वह शरीर को आत्मा में भिन्न समझता है, विचारता है रोग तो शरीर में है, आत्मा में नहीं—यह रोग कम का भोग है यदि ज्ञान पूरक शक्ति के साथ सृंगा तो मैं मरूंगा, संक्लेशित होने से आगे के लिये और नया धर्म बंध जावेगा । ऐसा जान वह वेदना से डरता नहीं, परन्तु निरोग होने के लिये यथोचित उपाय अवश्य करता है ।

**अनरक्षा—भय—**सम्यक्-दृष्टि के ऐसा विचार नहीं होता कि मेरा रक्तक मसार में कौन है । यदि वह अकेला कहीं परदेश में, जंगल में या किसी और स्थान में होता है, कोई आपत्ति आजाती है तो वह धरता नहीं डरता नहीं । उसे अपने आत्मा के अजर अमर पने पर भरोसा होता है । उस समय में वह विचारता है मेरी आत्मा ही अपनी शरण आप है—न इसका कोई रक्षक है और न कोई इसका घातक है—व्यवहार में अरहत, सिद्ध, माधु तथा भगवान का धर्म ही एकमात्र शरण है । निर्भय हुआ आपत्ति को धर्म भावना के साथ दृढ़ता पूर्वक झेलता है ।

**अगुप्ति भय—**सम्यक्-दृष्टि के ऐसा भय नहीं आता कि हमारा माल छपाना लुप्त गया तो क्या होगा ? चोर डाकू लुट्टी लूट

कर ले गये तो क्या बनेगा ? वह अपनी रक्षा का प्रयत्न करता है, पूरा पूरा प्रयत्न करता है, परन्तु रहता निश्चिन्त है । विचारता है हमारा कर्तव्य तो केवल न्याय करना है, यदि प्रयत्न करते २ भी असाता वेनीय कर्म के उदय से हानि होता है तो होवे, अधीर काह को होना । यदि पुण्य का उदय है तो हमारा प्रयत्न अवश्य सफल होगा, हानि क्यों होगा । पुण्य का उदय है तो लक्ष्मी बनी रहगी, चोर डाकू बगैरह कुछ नहीं कर सकते, पुण्योदय ही यदि नहीं रहा तो लक्ष्मी चली जायेगी—लक्ष्मी जड़ है, मुमम भिन्न हैं । मेरी शुद्धचेतना रूप विभूति तो मेरे पास है, उसे तो कोई छू नहीं सकता, छू नहीं सकता वहाँ किसी का प्रवेश ही नहीं ।

अकस्मात् भय—सम्यक्दृष्टि के इस बात का भय नहीं कि न साहस किसी समय अचानक क्या हो जाव । उसके इस बात का भय नहीं कि बिजली गिर गई तो क्या होगा, भूकम्प आगया तो क्या होगा, युद्ध हो रहा है घम्य का गोला अचानक आपड़ा तो क्या बनेगा ? इस प्रकार के खयाली भय उस के दिल में नहीं आत—प्रयत्न करता है नतीजे को कर्मादय पर छोड देता है, भयभीत नहीं होता । यदि कोई ऐसी दुर्घटना, रक्षा का प्रयत्न करते २ भी होजाती है तो कम का फल समझ धैर्य तथा समता के साथ उसे सहन करता है, कायर नहीं होता ।

इस प्रकार एक सम्यक्दृष्टि इन सब भयो से रहित होता है, नि शङ्क रहता है, उसे कोई भय छू नहीं पाता । वह आत्मबल का धर्ती विचार तिल होता है, एक चौर थोडा की तरह जीवन की



कठिनाइयाँ को धीरता हुआ, अपने नियत मार्ग पर आगे बढ़ता हुआ, अपने ध्येय की ओर सीधा चला जाता है ।

### । प्ररनायलि

(१) सम्यक्दृष्टि के भय होता है या नहीं ? यदि नहीं तो क्यों ?

(२) भय कितने प्रकार का होता है ?

(३) इसलोक भय और परलोकभय से तुम क्या समझते हो ?

(४) मरण भय किसे कहते हैं ?

एक सम्यक्दृष्टि बीमार पड़ जाने पर अपना इलाज करता है या नहीं ?

(५) वेदना भय क्या होता है ?

(६) अगुप्तिभय किसे कहते हैं ?

(७) अनरक्षा भय और अकस्मान् भय में आप क्या समझते हैं ।

(८) आपत्ति के समय एक सम्यक्दृष्टि अपनी रक्षा के उपाय करता है या नहीं ? यदि करता है तो क्या समझ कर ?

(९) नीचे लिखी हालतों में सम्यक्दृष्टि क्या करेगा और क्या नहीं ?

(क) पुत्र के सख्त बीमार होने पर ।

(ख) गली में भयंकर मरी-रोग फैल जाने पर ।

(ग) अकेला होते हुए किसी मुकदमे में फँस जाने पर ।

(घ) भूचाल आने पर, बाढ़ आजाने पर, मार्ग में जाते हुए ढाकुओं के आजाने पर, युद्ध में लड़ते २ शत्रु से घायल होकर गिरते समय ।

## सम्यक्दृष्टि की निरभिमानता

संसारी जीव अनादि काल से मिथ्यात्व के उदय से पर्याय-बुद्धि हो रहा है। जाति, कुल, विद्या, बल, ऐश्वर्य, रूप, तप, धन आदि को अपना आपा मान गर्व किया करता है। वह अज्ञान से यह नहीं जानता कि ये सब कम के आधीन हैं, पुद्गल के विकार हैं, विनाशीक हैं, क्षण भंगुर हैं। सम्यक्दृष्टि समझता है कि ये सब मुझ से जुदा है, मेरा स्वरूप इनसे भिन्न है, मैं चेतना-स्वरूप हूँ, यह पर हैं, विनाशीक हैं, क्षण भंगुर हैं, इन का गर्व करना संसार भ्रमण का कारण है। इसलिये सम्यक्दृष्टि किसी प्रकार का मद ( घमंड ) नहीं किया करता है। मान करने से नीच गति का बंध होता है।

मद आठ बातों का होता है—जातिमद, कुलमद, विद्यामद, बलमद, ऐश्वर्यमद, रूपमद, तपमद, और धनमद,

१ जातिमद—माता के पक्ष को जाति कहते हैं। अपने नाना मामा के कुल का घमंड करना जातिमद है। मेरी माँ बड़े ऊँचे कुल की है, मेरे नाना, मामा बड़े २ आदमी हैं, उन्होंने बड़े बड़े कारज किये हैं, बड़े घनाड्य हैं, चलती वाले हैं इत्यादि घमंड करना जातिमद है।

२ कुलमद—पिता के वंश को कुल कहते हैं। सम्यक्दृष्टि कुल का घमंड नहीं करता। वह तो विचारता है कि जाति और कुल का क्या मान करू। यदि उच्च-जाति और कुल का होकर धोवा

मान करता हूँ, नीच काम करता हूँ, निचो आचरण कर रहा हूँ तो विष्कार है मेरे जीवन को। कर्मोदय से यदि उच्च जाति और कुल मिल भी गये तो मेरा कर्तव्य यह है कि नीच व अधम आचरण का त्याग करूँ, विवेक से काम लूँ। फलह मगड़ा करना मारन-साइन, गाली-गलौज, मँड बचन बोलना मुझे उचित नहीं। गुआ, बेरया सेवन, परधन हरना, हिंसा करना, अन्याय भ्रतीति से घन कमाना, उच्च-कुल और उच्च जाति वाले के लिये उचित नहीं। उच्च-कुल में या जाति में जन्म लिया तो मेरा यही कर्तव्य है कि हिंसा न करूँ, झूठ न बोलूँ, चोरी न करूँ, छलरूप न करूँ, मौस-मदिरा का त्याग करूँ, जीव-दया पाडूँ, परोपकार करूँ, अपना आत्म कल्याण करूँ, यही मेरा कर्तव्य है। ऐसे ही सदाचार से उच्च-कुल और उच्च-जाति की शोभा है। अनेक धार नाना प्रकार की उच्च व नीच जातियों में जन्म होना, अथ मैं किसी को नीच जाति का मान काहे को मान करूँ, मैं जन्म ले काहे को घमँड करूँ। यह सब

मेरा मान धरना मुझे अपने आप नीच बनाना कि अपने जीवन को क्षमा, स्वाध्याय, परोपकार आदि सदगुणों के द्वारा ऊँचा बनाऊँ का मान करके अ

नष्ट न करूँ।

बलम

कि

यल का मद नहीं  
यल पाकर मैं  
धरती, त्री गादि

जमीन की खुबो का पता उसमें उगने वाले पौधे से लगता है। ५१

अपमान और तिरस्कार करू तो मेरे में और सप सिंह आदि दुष्ट हिंसक जीवों में क्या अंतर रहा—अथ पुण्योदय ने यदि यह बल पाया है तो मेरा फर्तव्य है कि हमसे दूसरों की रक्षा करू, धर्म की रक्षा करू, ब्रह्मचर्य का पालन करू, व्रत, उपवास शील-सयम का पालन करू, तपश्चरण करू। यदि कोई कष्ट या आपत्ति आवे तो उसमें कायर न होऊँ। धैर्य के साथ सहन करू, दीनता को पास न फटकने दू, असहाय निर्बलों को सहायता, शरणागतों की रक्षा करू। दान-हीन असमर्थ जनों के दुष्ट बचनों को सुनकर उनसे बदला चुकाने की सामर्थ्य अपने को होने हुए भी उनको क्षमा करू। अपने आत्मबल के द्वारा तपश्चरण पर कर्मों को चयन कर मोक्ष के स्वाधीन अविनारी पद की प्राप्ति करू।

ऋद्धिमद — धन-संपदा का घमंड करना ऋद्धिमद है। सम्यक दृष्टि धन-संपदा को अपने आत्म कल्याण के रास्ते में एक बड़ी रुकावट समझता है। इसे राग-द्वेष, मय, मोह, सताप शोक, क्लेश, वैर, हानि का प्रबल कारण समझता है। यह लक्ष्मी मनुष्य को मदोन्मत्त बनाने वाली है। बेरया के समान पंचल है। इसका क्या पतियारा। आज नीच के घर है तो कल ऊँच के है। सम्यक दृष्टि इस पराधीन विनाशाक दुःख की कारण लक्ष्मी का गर्व नहीं करता, बल्कि तो अपने आत्मा के अछँड ज्ञान को ही अपनी भद्र, स्वाधीन, अविनारी लक्ष्मी ज्ञानता है और भावना करता है कि कथं इस लक्ष्मी को त्याग, गृह जंजाल से छूट, निर्मन्थ बन शिवलक्ष्मी को प्राप्त

**तप-मद**—सम्यक् दृष्टि विचारता है, तप का मद कैसा ? तप का भी मद किया तो फिर तप क्यों किया—तप तो वहाँ है जहाँ क्रोध, मान, माया, लोभ नहीं, विकार परिणाम नहीं, आलस्य नहीं, प्रमाद नहीं। इच्छाओं के निरोध का नाम ही तप है, जब इच्छाएँ बनी रहीं तो तप कहीं ? लालसा पटे नहीं, जीने की वाढ़ा बनी रही, मरने से डरता है, हानि-स्वाम में, स्तुति निदा में ममता भाव हुआ नहीं फिर तप क्या ? तप तो वहाँ है जहाँ आत्म ध्यान है, जहाँ शुद्धात्मा में तल्लीनता है—तप तो मेरे आत्म चल्याण का साधन है, इसका कैसा मान ? जहाँ गर्व है वहाँ कर्म-बंध है, जहाँ कर्म बंध है वहाँ आत्म विश्वास कैसा ? धन्य हैं वे महान पुरुष जिन्होंने तप करके कर्मों को छुड़ा दिया और परम भीतरात्मा को प्राप्त किया।

**रूप-मद**—सम्यक् दृष्टि रूप का मद नहीं करता। रूप सृष्टि भँगुर है, पराधीन है, पुद्गल की पयाय है, आत्मा का इससे क्या सम्बन्ध है, रूप का गर्व करना व्यर्थ है। सुन्दर रूप को पाकर व्यभिचारी न बनना, शील में दूषण नहीं लगाना, दीन-हीन दरिद्री, खगड़े-खुजे अज्ञहीन, मलिन मनुष्यों को देख कर उनसे ग्लानि नहीं करना, उनका तिरस्कार नहीं करना, यह ही मरा कर्तव्य है—ऐसा सम्यक् दृष्टि विचारता है—आज ससार में अपने आपको गोरी कहने वाली जातियाँ रूप के मद में मतबली हो रही हैं, उससे जो जो शक्तियाँ उनकी अपनी और अन्य जातियों की हो रही हैं वे सब जानते हैं।

**विद्यामद**—जो ज्ञान इन्द्रियो के आधीन है, यात, पित्त, कफ के आधीन है, तिल विभाग आदि के खराब हो जाने पर जो ज्ञान क्षण-मात्र में विगड़ जाता है, उसका क्या गर्व करो । जो विद्या नाना प्रकार के घातक शक्तियों द्वारा निर्दोष प्राप्त, वैरा आदि के विष्वंस कर डालने में ही मनुष्यों को प्रवीण बनाती है, जो विद्या भोलेभाले जीवों को छूटने-भारने, प्राण हरने का पाठ पढ़ाती है, जो विद्या उठे को सचा कर देने तथा सचे को झूठा कर देने में, दूमरो को बाधा पहुचाने में, सताने में मनुष्यों को प्रवीण बनाती है, उसका क्या मान करें । यह विद्या मंसार भ्रमण से हमें छुड़ा नहीं सकती, हमारे अधिक पतन का कारण होती है—ऐसा एक सम्यक् दृष्टि विचारता है । वह तो उस ज्ञान का पुजारी है जो सतकी आत्मा में भेद विज्ञान जाग्रत कर देवे, जो उसके हीन आचरण को छुड़ा उसे उसके आत्म कल्याण के सबे माग पर लगा देवे, विषय कषाय से हटा परम समता की ओर ले जावे और मंसार भ्रमण से छूटने में सहायक हो । जहाँ ऐश्वर्य शान्त होगा वहाँ मद नहीं होगा ।

**ऐश्वर्यमद**—राज्यपद तथा हुकूमत का अभिमान करना ऐश्वर्य मद है—सम्यक दृष्टि ऐश्वर्य के नशे में चूर नहीं होता—ऐश्वर्य पाकर वह तो जीवों की सेवा तथा उपकार करता ही अपना कर्तव्य समझता है । वह विचारता है कि ऐश्वर्य पाकर निरमिमान रहना, बाधा रहित होना, न्याय करना, प्राणी मात्र से मैत्री भाव रखना, यथायोग्य छोटे बड़े सबका आदर-सत्कार करना

३४ अच्छी सगत से बढ़कर भादमी का सहायक कोई नहीं है।

मेरा कर्तव्य है। दूसरे जीवों को दीन हीन पीड़ित देखकर तथा उनको कमजोर, धन हीन, पलहीन, जानकर उन पर जुझम नहीं करता है, कठुणा बुद्धि से उनके दुख-संकट दूर करने का प्रयत्न किया करता है। वह विचारता है यह ऐश्वर्य तो कमायीन है, सण भंगुर है, इसका क्या गव करूँ ? मेरी अपनी आत्मा का ऐश्वर्य अविनारी है, स्वाधीन है, अनंत शक्तिरूप है, मेरे लिये बही आदरणीय है। इन आठों मदों पर विचार करके इनका त्याग करना ही श्रेष्ठ है—किसी न किसी तरह प्रत्यक मनुष्य इनके जाल में पँस जाता है और अपने लिये ससार को बढ़ा लेता है—इनके फँसे में न पस कर मन पर अंकुरा रखता तथा जीवन का सफल बनाता है।

### प्रश्नावलि

(१) क्या सम्यक दृष्टि बाल्य में निर्मद होता है ? होता है तो क्यों ?

(२) मद के प्रकार का होता है ? मदों के नाम गिनाओ,

(३) कुल-मद और जाति मद से आप क्या समझते हैं ?

(४) एक घनाढ्य सेठ का पुत्र एक नीच कुल के मनुष्य को दुकुरा कर चलता है, क्या वह अच्छा करता है ? यदि यह सम्यक दृष्टि हो तो क्या करे ?

(५) बलमद से तुम क्या समझते हो ? एक बलवान लड़का अपने बल के कारण अपनी कक्षा के गरीब निबल लड़कों को संताता है, दूसरा बलवान लड़का उनको दुःखी देखकर उनकी

सहायता करता है और रक्षा करता है कौन सा अच्छा है ?  
मद कौन से के हैं ?

(६) श्रद्धा-मद और तप मद किसे कहते हैं, उदाहरण देकर समझाओ।

(७) रूप मद किसे कहते हैं ? बहुत सी गौरे रंगवाली जातियाँ अपने देशों में अन्य काले रंगवाली जाति वालों को नहीं घुसने देती अथवा अपने समान अधिकार नहीं देती, उनके मद है या नहीं ? यदि है तो कौन सा मद है ?

(८) विद्या-मद किसे कहते हैं ? एक होशियार विद्यार्थी अपनी कक्षा के जरा कमजोर छात्रों से नाक भी चढ़ाता है। उनके साथ बैठना उठना पबन्द नहीं करता—क्या वह अच्छा करता है, उसके कौनसा मद है ?

(९) ऐश्वर्य मद से तुम क्या समझते हो ? एक आनरेरी मजिस्ट्रेट अपने गरीब पड़ोसी के मकान को अपने मकान में मिलाने के लिये बहुत कम क्रीमत पर अपने मजिस्ट्रेट होने का डर दिखा कर लेना चाहता है, क्या वह ठीक है ? उसके मद हैं या नहीं यदि है तो कौन सा ?

(१०) मान से क्या हानि होती है ?

३ १ १ १ १ १



३४ अच्छी सगत से बढ़कर आदमी का सहायक कोई नहीं है।

मेरा कर्तव्य है। दूसरे जीवों को दीन हीन पीड़ित देखकर तथा उनको कमजोर, धन हीन, बलहीन, जानकर उन पर जुल्म नहीं करता है, कठुणा बुद्धि से उनके दुख-संकट दूर करने का प्रयत्न किया करता है। वह विचारता है यह ऐश्वर्य तो कर्मोधीन है, सृणु भंगुर है, इसका क्या गव करू ? मेरी अपनी आत्मा का ऐश्वर्य अविनाशी है, स्वाधीन है, अनंत शक्तिरूप है, मेरे लिये वही आदरणीय है। इन आठों मदों पर विचार करके इनका त्याग करना ही श्रेष्ठ है—किसी न किसी तरह प्रत्येक मनुष्य इनके जाल में फँस जाता है और अपने लिये ससार को बढ़ा लेता है—इनके फन्दे में न फस कर मन पर अकुरुश रखता तथा जीवन को सफल बनाता है।

### प्रश्नावलि

(१) क्या सम्यक दृष्टि वास्तव में निर्मद होता है ? होता है तो क्यों ?

(२) मद के प्रकार का होता है ? मदों के नाम गिनाओ,

(३) कुल-मद और जाति मद से आन क्या समझते हैं ?

(४) एक घनाट्य सेठ का पुत्र एक नीच कुल के मनुष्य को डुकरा कर चलता है, क्या वह अच्छा करता है ? यदि यह सम्यक दृष्टि हो तो क्या करे ?

(५) बलमद से तुम क्या समझते हो ? एक बलवान लड़का अपने बल के कारण अपनी कक्षा के गरीब, निचल लड़कों को खताता है, दूसरा बलवान लड़का उनको दुःखी देखकर उनकी

सहायता करता है और रक्षा करता है कौन सा अच्छा है ? मद कौन से के हैं ?

(६) श्रद्धि-मद और तप मद किसे कहते हैं, उदाहरण देकर समझाओ।

(७) रूप मद किसे कहते हैं ? बहुत सी गोरे रंगवाली जातियाँ अपने देशों में अन्य काने रंगवाली जाति वालों को नहीं घुसने देती अथवा अपने समान अधिकार नहीं देती, उनके मद है या नहीं ? यदि है तो कौन सा मद है ?

(८) विद्या-मद किसे कहते हैं ? एक होशियार दिग्दर्शी अपनी कक्षा के जरा कमजोर छात्रों से नाक भी उड़ाता है। उनके साथ बैठना उठना पसन्द नहीं करता—क्या वह अच्छा करता है, उसके कौनसा मद है ?

(९) पेशवर्य मद से तुम क्या समझते हो ? एक आनरेरी मजिस्ट्रेट अपने गरीब पड़ोसी के मकान को अपने मकान में मिलाने के लिये बहुत कम प्रीमियम पर अपने मजिस्ट्रेट होने का हार दिखा कर लेना चाहता है, क्या वह ठीक है ? उसके मद हैं या नहीं यदि है तो कौन सा ?

(१०) मान से क्या हानि होती है ?

## तीन मूढता और छह अनायतन

वे सोचे समझे, बिना विचारे और परिचा किये बिना अन्धे की तरह लोगों के देखा देखी निम्न प्रकार लोक में कोई प्रवृत्ति चल रही है, उसी के अनुसार कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र और कुधर्म को मानना, उनकी प्रशंसा करना मूढता है । सम्यक्त्व इस प्रकार की मूढता में नहीं फँसता वह तो विचार और परीक्षा के साथही धर्म की धातो को मानता है । मूढतायें तीन हैं,—देव मूढता, लोक मूढता और गुरु मूढता ।

**देव मूढता**—बिना विचारे लोगों की देखादेखी रागी हो पी देवों को मानकर पूजना और उनसे अपने ससारी धर्म की सिद्धि मानना । देव मूढता है ।

**लोक मूढता**—मिथ्या दृष्टियों की देखादेखी बिना विचारे मह्य में मुष्प मानना, कुँआ पूजना, पीपल पूजना, किसी नदी में स्नान कर लेने मात्र से मुक्ति हो जाना नाना रूप में वैसे की पूजा करना, दधान कलम यहीखाते का पूजना—वालू रेत का ढेर लगाकर या कंकड़ियों का ढेर लगाकर पूजना, पर्वत से गिरकर प्राण खो देने में मुक्ति मानना, काशी करौत लेना, जलकर सती होने में धर्म मानना, इत्यादिक यह सष लोक मूढता के दृष्टान्त हैं । सम्यक दृष्टि इसप्रकार की कोई क्रिया नहीं करता वह तो । जोभी क्रिया करता है योग्य, अयोग्य-सत्य असत्य, हित अहित का विचार करके विवेक पूर्वक करता है,

गुरु मूढता—मयसे, लोभसे तथा आशासे रागी ह्वेपी, कामी, दुम्भी, इन्द्रिय विषय लंपटी बेषचारी पास्रही गुरुओ का मानना गुरु मूढता है । सम्यक दृष्टि ऐसे गुरु की भक्ति उपासना कभी नहीं करता, वह तो परम ज्ञानी, परम ध्यानी, तपस्वी निर्मेन्ध गुरुओ की ही भक्ति, पूजा, वैयावृत्य आदि किया करता है । सम्यक दृष्टि लोक प्रवृत्ति का कुलभी आश्रय नहीं लेता है, वह सब काम विचार पूर्वक ही किया करता है ।

अनायतन—धर्म के आश्रय या स्थान को अनायतन कहते हैं

छोटे आश्रय को अनायतन कहते हैं । अनायतन छह हैं । “छोटे देव” । “छोटे गुरु” और “छोटे शास्त्र”, “छोटे देव” का “श्रद्धान या सेवन करने वाला” “छोटे गुरु की भक्ति करने वाला” “और छोटे शास्त्र का पढ़ने वाला” । ये छह धर्म के आयतन नहीं हैं, अनयातन हैं । इनकी भक्ति ने मोक्ष मार्ग की प्राप्ति नहीं होती, सम्यकदृष्टि “तीन मूढता”—“आठ मद” आठ शकादिक, “दोष छह अनायतन” इन पचीस दोषो को त्यग कर व्यवहार सम्यक दर्शन को धारण करके निश्चय सम्यक दर्शन को प्राप्त करता है । जिसके ऊपर लिखे पचीस दोष रहित शुद्ध आत्मा का श्रद्धान भाव होता है, उसी ही के नियम पूर्वक निश्चय सम्यक दर्शन होता है । जिसका व्यवहार सम्यक्त्व ही दूषित है उसके निश्चय सम्यकत्व कैसे शुद्ध हो सकता है ?

एक अविरत सम्यकदृष्टि मी जहा तक उसका वह चलना है कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र, तथा कुधर्म को नमस्कार नहीं

अन्य व्यवहारियों का लौकिक रीति अनुसार यथायोग्य विनय, सत्कार जरूर करता है, यदि कोई उसपर जबरदस्ती जोरावरी करता है तो वह देश को छोड़ना, भाजीबिका को छोड़ देना, धन को त्याग देना इत्यादि बातों को तो स्वीकार लेता है परन्तु कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र तथा अन्य कुलिनियों की आराधना वह कभी मंजूर नहीं करता ब्रती श्रावको का तथा साधु महाराज का तो कहना ही क्या है ?

### प्रभावलि

- ( १ ) मूढ़ता किसे कहते हैं ? मूढ़ताएँ कितने प्रकार की होती हैं ?
- ( २ ) देव मूढ़ताका स्वरूप उदाहरण देकर समझाइयेगा,
- ( ३ ) गुरु मूढ़ता क्या होती है। उदाहरण भी दो, ।
- ( ४ ) लोक मूढ़ता किसे कहते हैं उदाहरण देकर समझओ,
- ( ५ ) अनायतन से क्या समझते हो ? अनायतन किनने होते हैं ?  
उनके नाम बताओ ?
- ( ६ ) अनायतन की भक्ति से क्या हानि होती है ?
- ( ७ ) सम्यक्त्व के २५ दोष कौन हैं उनके नाम बताओ ?

## सम्यक् दृष्टि के बाहरी चिन्ह

और

विशेष गुण

सम्यक्-दृष्टि के नीचे लिखे आठ बाहरी गुण प्रगट होते हैं —

- ( १ ) संवेग—सम्यक् दृष्टि के धर्म में अनुराग होता है। वह अन्याय के विषय शृ गार, विक्रयाओ में, पापमय संगति में, स्त्री, पुत्र, धन, आदिक में अनुराग नहीं करता—उसको तो दराक्षक्षण धर्म में, धर्मात्मा पुरुषों की संगति में, धर्म, कथा में और धर्मायतनों में प्रेम होता है।
- ( २ ) निर्वेदः—सम्यक् दृष्टि ससार, शरीर और भोगों से स्वभाव से ही विरक्त होता है। वैराग्य तथा उसके साधनों से उसे बड़ा प्रेम होता है, वह धर्म प्रेम में ही रंगा रहता है।
- ( ३ ) आत्म-निन्दा—मनुष्य जन्म पाना कठिन है, यदि एक क्षण भी मेरे जीवन की धर्म साधन बिना जाता है तो बड़ा अनर्थ है, ऐसा एक सम्यक् दृष्टि विचारता है। यदि किसी समय उसको प्रमाद आजाता है या उसके परिणाम अभयम रूप होजाते हैं तो वह अपने दोष को विचार कर अपनी निन्दा करता है।
- ( ४ ) गर्हा—यदि किसी सम्यक् दृष्टि से कोई खोटा आचरण होजाता है या उसे कोई दोष लग जाता है तो वह गुद वा

६२ फिर न तुम्हें जटा रखने की जरूरत है न सिर मुड़ाने की।

- (४) उपशम, भक्ति, वात्सल्य और अनुष्णा इन चारों से आप क्या समझते हैं ?
- (५) सम्यक् दृष्टि के विशेष गुणों का वर्णन संक्षेप से करो।

## सम्यक् दर्शन की महिमा

सम्यक् दर्शन की अपूर्व महिमा है, सम्यक् दृष्टि सदा सन्तोषी रहता है, सम्यक्-दृष्टि यदि चारित्र्य मोहनीय कम के उदय से प्रत उपवास थोड़े भी न कर सकें तो भी उन सम्यक्-दृष्टियों कि इन्द्र पूजा करते हैं। यद्यपि वे गृहस्थी हैं परन्तु वे घर में रहते हुए भी घर से जुदा हैं, घर में नहीं रहते,—घर के मोह में नहीं फँसे हुए हैं—जैसे जल के अन्दर ज म लेने वाला, उसी में रहनेवाला कमल जलसे अलग रहता है, जैसे कीचड़ में पड़ा हुआ सोना भी निर्मल रहता है, वैसे ही गृहस्थी सम्यक् दृष्टि भी निर्मल रहते हैं। सम्यक्-दृष्टि मर कर पहल्ले नर्क के सिवाय बाकी छद्म नर्कों में, व्योतिपी, व्यन्तर, भयन वासी देवों में नपुसकों और द्रिषों में, स्थावर एकेन्द्रिय में, दो 'इन्द्रिय में तीन इन्द्रिय और द्रिष विकल्पत्रय और पशुओं में जन्म नहीं लेता, चाँदाल माता पितासे उत्पन्न एक चाँदाल भी यदि सम्यक्-दर्शन सहित है तो उसे भगवान गणधर देव "देव" ही कहते हैं। पूजा

गुणोंकी है, नकि शरीर की। शरीर की पूजा कौन करता है ? कौन ज्ञानी इससे राग करता है ? कौन इसकी पूजा बंदना करता है, यहतो सम्यक्-दर्शन गुण के प्रगट होने पर बंदने तथा पूजने योग्य होता है। धर्म के प्रभाव से एक कुत्ता भी मर कर स्वर्ग में जाकर देव हो जाता है और पाप के निमित्त से स्वर्ग का महारिद्धिधारी देव भी पृथ्वी पर आकर कुत्ता हो जाता है। ऐसी सम्यक् दर्शन की महिमा है। सम्यक्-दर्शन, ज्ञान और चरित्र से बढ़कर है। क्यों कि सम्यक्-दर्शन रत्नत्रय रूप मोक्षमार्ग में सबसे प्रधान माना गया है। जैसे समुद्र में जहाज को समुद्र के पार ले जाने में एक अच्छा खेवटिया ही दत्त और समर्थ होता है, वैसे ही संसार समुद्र में से रत्नत्रय रूप जहाज को पार लेजाने के लिये सम्यक् दर्शन ही एक समर्थ खेवटिया है। रत्नत्रय में सम्यक् दर्शन ही सबसे श्रेष्ठ है। सम्यक् दर्शन ही ज्ञान चरित्र का बीज है, धर्म और शांतभावका जीवन है, तप और स्वध्यायका आधार है। जिसके निर्मल सम्यक् दर्शन प्राप्त होगया वह बड़ा पुण्यात्मा है, मानो मुक्त रूप ही है, क्योंकि मोक्ष के प्रधान कारण ये ही हैं। वास्तव में प्राणियों के लिये सम्यक्-दर्शन जैसा तीन काल और तीन लोकमें और कोई कस्याणकारी नहीं है और मिथ्यात्व जैसा अहंकार करने वाला तीन लोक में और तीन कालमें कोई भी द्रव्य चेतन या अचेतन न हुआ है, न है और न होगा। सम्यक्-दर्शन से पवित्र पुरुष मनुष्यो का तिलक होता है। सम्यक् दृष्टि ही पराक्रम, प्रताप, विजय, शक्ति,



गुणों का स्वामी होता है। महान घम, महान अर्थ, महान काम महान मोक्षरूप चारों पुण्यार्थों का स्वामी होता है। सम्यक-दर्शन के प्रभाव से अनुपम महारिद्धि का धारक देव तथा चक्रवर्ती होता है। सम्यक-दर्शन की ही वदीलत एक जीव देवेन्द्र, परमेन्द्र, चक्रवर्ती तथा गणधर देवों द्वारा पूज्य तर्क पर पदवी प्राप्त होता है। सम्यक-दर्शन का घनी ही मोक्ष के अद्वितीय, अजर अमर, अविनाशी सुख ही प्राप्त होता है। इस प्रकार सम्यक-दर्शन की महिमा को जान कर अन्य जीवों को सम्यक दर्शन रूप अमृत का ही पान करना योग्य है। सम्यक-दर्शन अनुपम अतीन्द्रिय सहज सुख का भंडार है, सब कल्याण का बीज है, ससार समुद्र से पार करने के लिये जहाज के समान है, भव्य जीव ही इसको वा सकत हैं, यह पापरूपी गृह के काटने को कुठार हैं। पवित्र तीर्थों में यही प्रधान है और मिथ्यात्व का शत्रु है।

## प्रश्नावली

- (१) गृहस्थी सम्यक-दृष्टि गृहस्थ में गलत दृष्ट भी निर्मल है, दृष्टान्त देकर समझाओ।
- (२) सम्यक-दृष्टि मर कर कहा कहा घम नहीं लेता ?
- (३) रत्नत्रय में सम्यक-दर्शन को सधमे मुख्य और श्रेष्ठ क्यों माना गया है ?
- (४) ससार में जीव के लिये सबसे भेष्ठ कल्याणकारी वस्तु क्या है ? और सबसे व्यादा हानिकारक कौन है ?

- (५) एक सम्यक्दृष्टि चाण्डाल भी देवो कर पूजनीक होता है, इस सम्बन्ध में कोई क्या याद होतो सुनाओ।
- (६) सम्यक्-दर्शन की विशेष महिमा अपने शब्दों में वर्णन करो।
- (७) सम्यक्-दर्शन का फल क्या होता है ?

## प्रेम भावना

( ज्योतिप्रसाद )

धर्मज्ञ वेव तुमसे, मेरी यह इत्तजा है।  
 संसार गहन घन में, जो दुस्त्र भरा दुःख है ॥  
 उस दुस्त्र को मेटने की, गुण ज्ञान जो दवा है।  
 वह हाम में हो मेरे, यह मेरी भावना है।  
 मैं उस दवा से मेहँ, दुस्त्र जग क प्राणियों का,  
 और भ्रम सभी मिटादू, दिल से अज्ञानियों का ॥१॥

रह कर के ब्रह्मचारी, विद्या करू मैं हासिल।  
 आत्मिक बनू मैं पूरा, हर एक मन में का।मल।  
 होकर धरम का माहिर, हर एक धमल का आमिल।  
 चकखु चखाऊ सबको, गुण ज्ञान के सरस फल ॥  
 रक्षा करू मैं अपने, बलवीर्य की निमा कर।  
 सेवा करू धरम की, जिस्म और औ गवाकर ॥२॥

अजुन मा बल हो मुझ में, और भीम सी हो ताकत।  
 अफलक सी हो हिम्मत, निडलक सी गुजाधत।  
 श्रीपाल जैसी पिरता, और राम जैसी इज्जत।

गुणों का स्वामी होता है। महान धम, महान अर्थ, महान काम महान मोक्षरूप चारों पुरुषार्थों का स्वामी होता है। सम्यक-दर्शन के प्रभाव से मनुष्य महारिद्धि का धारक देव तथा चक्रवर्ती होता है। सम्यक-दर्शन की ही बदीलत एफ जीव देवेद्र, घरणेद्र, चक्रवर्ती तथा गणधर देवों द्वारा पूज्य तर्कर पदको प्राप्त होता है। सम्यक-दर्शन का घनी ही मोक्ष के अद्वितीय, अजर अमर, अविनशी सुखको प्राप्त होता है। इस प्रकार सम्यक-दर्शन की महिमा को जान कर अन्य जीवों को सम्यक दर्शन रूअ अमृत का ही पान करना योग्य है। सम्यक-दर्शन अनुपम अनीन्द्रिय सहज सुखका भंडार है, सबे कल्याण का बीज हैं, ससार समुद्र से पार करने के लिये अहांज के समान हैं, भव्य जीव ही इमको पा सकते हैं, यद् पापरूपी घृत् के काटने यो कुठर है। पवित्र तीर्थों में यही प्रधान है और मिथ्यात्व का शत्रु है।

## प्रश्नावली

- (१) गृहस्थी सम्यक-दृष्टि गृहस्थ में रक्षत हुण भी निर्मल है, दृष्टान्त देकर समझाओ।
- (२) सम्यक-दृष्टि मर कर कहा कहा जम नहीं लेता ?
- (३) रत्नत्रयमें सम्यक-दर्शन को सबसे मुख्य और श्रेष्ठ क्यों माना गया है ?
- (४) ससार में जीव के लिये सबसे श्रेष्ठ कल्याणकारी वस्तु क्या है ? और सबसे ज्यादा हानिकारक कौन है ?

- (५) एक सम्यक्दृष्टि चाण्डाल भी देवो कर पूजनीक होता है, इस सम्बन्ध में कोई क्या याद होतो सुनाओ।
- (६) सम्यक्-दर्शन की विशेष महिमा अपने शब्दों में वर्णन करो।
- (७) सम्यक्-दर्शन का फल क्या होता है ?

## प्रेम भावना

( व्योतिप्रसाद )

सर्वेश देव तुमसे, मेरी यह इत्तसा है।  
 संसार गहन घन में, जो दुख भरा हुआ है ॥  
 उस दुख को मेटने की, गुण ज्ञान जो दवा है।  
 वह हाथ में हो मेरे, यह मेरी भावना है।  
 मैं उस दवा से मेढ़ूँ, दुख जग क प्राणियों का  
 और भ्रम सभी मिटादूँ, दिल से अज्ञानियों का ॥१॥

रह कर के ब्रह्मचारी, विद्या करू मैं हासिल।  
 आत्मि बन् में पूरा हरएक फन में कामल।  
 होकर धरम का मादिर, हर एक अमल का आसिल।  
 बकसु बसाऊ सबको, गुण ज्ञान के सरस फल ॥

रक्षा करू मैं अपने, बलवीर्य की निभा कर।  
 सेवा करू धरम की, जिस्म और जौं गवाकर ॥२॥

अजुन सा बल हो मुझ में, और भीम सी हो ताकत।  
 अकलक सी हो हिम्मत, निदलक सी शुजाधत।  
 श्रीपाल जैसी यिरता, और राम जैसी इखत।

विष्णु सा प्रेम मुझ में, लदमण सी हो मुहब्बत ॥

ब्रेयोस जैसी मुझ में, हाँ दान बोरता हो ।

सुखमाल जैसी मुझ में, हाँ ध्यान घोरता हो ॥३॥

सादा रिखा हो मेरी, सादा चलन हो मेरा,

मैं हूँ बतन का प्यारा, प्यारा बतन हो मेरा

सच्चा बचन हो मेरा, सच्चा परण हो मेरा,

आदर्श चिन्दगी हो उत्तम भजन हो मेरा ।

दुनियाँ के प्राणियों से ऐसा मेरा निबाह हो,

मुझ को भी उनकी चाह हो उनकी भी मेरा चाह हो ॥४॥

दुनिया के धीच करदू, गुण ज्ञान का उजेरा,

और दूर सब भगादू, अज्ञान का अघेरा ।

हर एक का मैं करदू, आराम स बसेरा,

मेदू दिलों से सब के, यह शब्द मेरा तेरा ।

मैं सब को एक कर दू, आत्म का रस पिलाकर ।

बाणी पवित्र सब की, महावीर की सुनाकर ॥५॥

भूलों को राह बतादू, इमराह खुद मैं जाकर,

गिरतों को मैं उठादू, हाथों में हाथ लाकर

झूबे हुए बचादू, गीते मैं खुद लगाकर,

सोतों को मैं जगादू, आवाज दे दिलाकर ॥

निष्ठकों को मैं मिलादू, हा प्रेम राग गाकर ।

मुदों को मैं जिलादू, रस प्रेम का पिलाकर ॥६॥

घर घर स जाके बाँदू, मैं प्रेम की मिठाई ।

बिद्या की रोशनी से, बने लगे दिखाई ।

१. दिल में हों प्रेम सब के, सब होवें भाई भाई ।  
 २. होने लगे हर एक के, दुख में हर एक सहाई ।  
 "ज्योति" में यह करूंगा, तन मन लगा के अपना ।  
 ३. सेवा करूंगा सब की, सब कुछ गवा के अपना ॥७॥

### शब्दार्थ

- |                      |                    |
|----------------------|--------------------|
| १ इल्लत जा—प्रार्थना | ५ आमिल—करने वाला   |
| २ आल्लिम—विद्वान     | ६ बतन—मातृ भूमि    |
| ३ कामिल—पारगामी      | ७ इसराह—साथ        |
| ४ माहिर—आचार्य       | ८ गिजा—मोजन, भाहार |

### प्रश्नावलि

- १—इस कविता के रचने वाले कौन हैं ? उनके सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं ?
- २—इस कविता में कवि ने जो विचार प्रगट किये हैं, अपनी सरल भाषा में उनका वर्णन करो—
- ३—इस कविता का जो छन्द आपको याद हो और प्यार लगता हो, जयानी सुनाओ ।
- ४—तीसरे छन्द का अर्थ समझाओ और उसमें जिन महात्माओं का नाम है किसी दो का हाल बताओ,

### वीर शिरोमणि चामुण्डराय

सत्कार में सत्यवादी, परोपकारी, भक्त, कवि, विद्वान, शिल्प के जानने वाले, योद्धा, धर्मरक्ष और दानवीर बहुत हो चुके हैं और

होते रहेंगे, परन्तु ऊपर लिखे सब गुण एक ही व्यक्ति में पाया जाना आश्चर्यजनक और कठिन सी बात है। ऐसे बहुत ही कम व्यक्ति देखने और सुनने में आए हैं, परन्तु जैन समाज में वीर शिरो-मणि चामुण्डराय ऐसे सब ही गुणों के धारक व्यक्ति हो चुके हैं। उन्होंने संसार में जन्म लेकर अपने कर्तव्य का पूरा पूरा पालन किया और केवल जैन समाज ही नहीं किन्तु सारे संसार के लिये आगामी काल में एक सद्गृहस्थ का आदर्श बनाकर छोड़ गये हैं। ऐसे नर रत्न का नाम जैन इतिहास में सुनहरी अक्षरों में अंकित रहेगा।

कर्तव्य पालन करना जान जोखो का काम है। देश-सेवा और धर्म के कारण अपने आपकी आहुति देना जीवन का दृश्य है। खाना पीना, मौज उड़ाना यह तो पशुओं में भी पाया जाता है। एक कर्तव्य का पालन ही मनुष्य में विशेषता रखता है। यदि यह विशेषता न हो तो मनुष्य और पशु में कोई अन्तर नहीं है।

द्रव्य दान देने वाले बहुत हैं, परन्तु जननी और जन्म भूमि की सेवा में अपने आपको बलिदान करने वाले बहुत कम व्यक्ति होते हैं। वीर चामुण्डराय का जीवन ऐसी २ बातों से भरा हुआ है। जैन धर्मानुयायी गग वंश मैसूर प्रांत में सन् १०३ ई० से सन् १००४ तक धराधर राज्य करता रहा। उस ही कुल में एक राजा राघमल्ल द्वितीय (१५४—१८४) हुए हैं। वीर शिरो-मणि चामुण्डराय इसी राजा राघमल्ल के मंत्री व सेनापति थे।

दुनियाँ में दो चीज हैं जो एक दूसरे से लिलकुल भिन्नती है (६६)

राजा चामुण्डराय ब्रह्मचर्य व्रत में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम और जन्म दिन अभी तक ज्ञात नहीं हुआ है। इनकी माता का नाम कल्लल देवी और स्त्री का नाम अजितादेवी था। श्री अजितसेनाचार्य और श्री नेमिचन्द्राचार्य सिद्धांत चक्रवर्ती इनके गुरु थे।

चामुण्डराय की माता जैन धर्म से बड़ा प्रेम रखती थी, जिससे पता चलता है कि चामुण्डराय के पूजक भी जैन धर्म के अनुयायी होंगे। वीर चामुण्डराय राजा राचमल्ल के मन्त्री होते हुए भी जिस ढंग से कार्य करते थे वह लेखनो से बाहर है। इतिहास तथा प्राचीन शिलालेखों से पता चलता है कि उनके मन्त्रित्व-काल में गंगवाड़ी (मैसूर) में विद्या, कला, शिल्प और व्यापार की अति वृद्धि थी। प्रजा सुखी और मालामाल थी। -

उस समय राष्ट्रभूट राजाओं की चलती थी, चामुण्डराय ने गंगा राजाओं से उनकी मैत्री करा दी। जिन राजाओं से मैत्री की, उन को लड़ाई में बड़ी सहायता दी और उनके लिए लड़ाइयाँ लड़कर उन्हें गंग वंश का विरभ्रष्टणी बना दिया। इससे प्रगट है कि चामुण्डराय राज नीति में बड़े निपुण थे। वे केवल राजनीतिज्ञ ही नहीं थे, किन्तु बड़े योद्धा भी थे। राज्य विद्या में बड़े प्रवीण और निपुण थे। इस राज्य विद्या का ज्ञान उन्हें आयसेन आचार्य द्वारा प्राप्त हुआ था। परोपकार के लिये युद्ध करना एक गृहस्थ का कर्तव्य है। राजा चामुण्डराय ने अपने इस कर्तव्य का पावन स्वरु अच्छी रीति से किया।  
में प्राण देने से नहीं हारने-मै, उन्होंने लड़ग



। काइयो में बड़ी वीरता दिखाई और विजय पाई । कितने  
 हलो को जीत कर उन पर अपना अधिकार किया । कितने  
 बड़े बड़े राजाओं को पराजित करके उनके अपराध का उन  
 वचित दण्ड दिया । इसी प्रकार के अनेक वीरता के कार्यों  
 कारण ही उ हे बहुत सी उपाधियाँ प्राप्त हुईं । वे समर पुर  
 वीर, मार्तण्ड, रणरत्नसिंह, वैरी कुल काल दह, मुज विक्रम,  
 दह गग, समर परशुराम, भटमारि, सुभट-चूड़ामणि,  
 शिरोमणि आदि कितनी ही उपाधियो से विभूषित थे ।

राजा चामुण्डराय केवल योद्धा ही नहीं थे, वे बड़े वि  
 भी थे । साहित्य और कविता खूब अच्छी तरह जानते  
 संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़ी भाषा के पूरा विज्ञान थे । उन्होंने स  
 में चारित्रसार ग्रन्थ रचा । कन्नड़ी भाषा में चामुण्डराय पु  
 की रचना की । श्री नेमिष द्वाचाय सिद्धान्त चक्रवर्ती ने  
 राजा चामुण्डराय की प्रार्थना पर श्रोगोमटसार प्राकृत ग्रन्थ  
 रचना की तो चामुण्डराय कन्नड़ी भाषा में साथ २ इसका  
 बाद करते जाते थे । इसी टीका के आधार पर केराव वर  
 संस्कृत टीका बनाई । इससे यह बिलकुल साफ हो जाता है  
 चामुण्डराय शास्त्र के चक्रवर्ती के ज्ञाता और कवि थे ।

चामुण्डराय श्रावक भी पढ़के थे, वह श्रावक धर्म का  
 रीति से पालन करते थे । सदैव सत्य बोलते थे, इसी लि  
 'सत्य सुधिष्ठिर' कहलाते थे । धर्म कार्यों में उनकी रुचि  
 बनी रहती थी । अपने बनाये चारित्रसार में वीर चामुण  
 ने मुनि धर्म और श्रावक धर्म दोनों का पूर्णरूप से बण

है, इससे जान पड़ता है कि वह श्रावणवार के पालने वाले थे। इसी कारण वह 'सम्यक् रत्नाकर' कहलाते थे।

जपनक 'श्रवणवेलगोल' में भगवान गोमटस्वामी की मूर्ति स्थापित है, तबतक चामुण्डराय का नाम लोक में प्रसिद्ध रहेगा। यह पापाण की सहगासन मूर्ति ५७ फुट उँची है। बड़ी मनोहर और दर्शनीय है। कारीगरी स्वतन्त्र की हुई है। देश विदेशों से बड़े यात्री इस विशाल मूर्ति को देखने आते हैं। बहुत से कहते हैं कि राजा चामुण्डराय ने बहुत धन खर्च करके इस मूर्ति को बनवाया था, बहुत से कहते हैं कि यह मूर्ति बहुत पुरानी है, चामुण्डराय ने इसे पृथ्वी से निकालकर फिर से स्थापित कराया था। चाहे कुछ भी हो चामुण्डराय का विशाल मूर्ति से बड़ा भारी सम्बन्ध है। राजा चामुण्डराय ने इन विशाल मूर्ति की बहुत रूपया खर्च करके प्रनिष्ठा कराई थी। इन मूर्ति की पूजा और रक्षा के लिये बहुत से गाँव इसके सम्बन्ध में लगा दिये। 'श्रवण वेल-गोल' नगर में एक मठ जिसके गढाधीश श्री नेमिचन्द्र जी सिद्धान्त धर्मवर्ति हुए, स्थापित किया।

चामुण्डराय ने जाति और देश सेवा के बहुत से शुभ कार्य किये। धर्म कार्य के लिये वह हर समय तैयार रहते थे। उन्होंने बहुत से जिन मन्दिर बनवाये, शास्त्र लिखवाये, बहुत सी पाठशालाएँ स्थापित की जिनमें न केवल धर्म की ही, परन्तु शिल्प-शास्त्र, ज्योतिष विद्या आदि सर्व ही विद्याएँ सिखाई जाती थीं।

यद्यपि राजा चामुण्डराय इस समय समार में नहीं हैं किन्तु उनके जीवन परिश्रम की घटनाएँ बेसी जायें तो वे अभी-तक

संसार में जाहित हैं। उनका जीवन चरित्र भावकों के लिये बड़ा शिक्षाप्रद और एक आदर्श गृहस्थ, धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थ के पालने वाले का प्रमाण है। उनके जीवन से हमें शिक्षा लेनी चाहिये कि गृहस्थ के लिये चर्मार्थ शस्त्र धारण करना कोई पाप नहीं है, शस्त्र धारण करने से मनुष्य घमण्ड्युत नहीं कहा जा सकता। चामुण्डराय सेना गति होकर भी अणुशुति सम्यक् दृष्टि गृहस्थ थे। ऐसा जलकृता है उनका चरित्र पढ़कर हमें चाहिये कि कायरता छोड़ें, वीरता का भाव अपने में जागृत करें। अभ्यास कर तथा शास्त्र विद्या का अभ्यास कर अपने पूण बल और पौरुष को और अद्भुत लौकिक व पारमार्थिक कार्यों को करने के लिये अपने को शक्तिशाली और साहसी बनावें।

## प्रश्नावलि

- (१) वीर शिरोमणि चामुण्डराय का जन्म किस देश और किस कुल में हुआ ?
- (२) क्या उनके माता पिता का नाम बता सकते हो ? उनके धर्म-गुरु कौन थे ?
- (३) चामुण्डराय अपने किन २ गुणों के कारण प्रसिद्ध हुए ?
- (४) चामुण्डराय ने ऐसा कौन सा कार्य किया जिसके कारण आज तक उनका यश गाया जाता है ?
- (५) चामुण्डराय ने कौन २ से ग्रन्थ लिखे ?
- (६) चामुण्डराय के जीवन से क्या २ शिक्षाएँ मिलती हैं ?

## रानी चेलना (अ)

मनहर महप है। उममें उच्च सिंहासन पर भव्याकृति भगवान महावीर विराजमान हैं, वे भव भय भीत प्राणियों को संसार सागर से पार होने का उपदेश दे रहे हैं।

उसी समय राजगृही का राजा श्रेणिक प्रभु का उपदेश सुनने आया। साथ में उनकी पत्नी चर्म प्राणा चेलना भी थी। उन्हें न किसी ने कहा "आइये न किसी ने उठकर उन्हें आगे की जगह ही घेंठने को दी। वहाँ राजा प्रजा में कोई भेद न था।

जब लोग उददेशामृत पान करके लौटे, सूर्य ढल चुका था सर्दी पड़ रही थी, ठंडी हवा आर कर तीर की तरह शरीर में प्रवेश कर रही थी। इससे लोग सीत्कार करते जन्दी २ अपने घरों की ओर बढ़े जा रहे थे। पत्नी अपने घोसलों की ओर दौड़ रहे थे और पशु अपने सुरक्षित स्थान में पहुँचने के विचार से भागे जा रहे थे।

राजा श्रेणिक और रानी चेलना की सवारियाँ एक पृष्ठ के नीचे खड़ी हुईं। उन्हें मालूम हुआ कि यहाँ से थोड़ी दूर पर घने जंगल में नदी के तट पर एक शिला है उस पर कोई मुनि ध्यान मग्न बैठा है।

राजा और रानी सवारियों से उतर कर नदी किनारे पहुँचे। एक लंबी चौड़ी शिला पर मुनिराज पद्मासन लगाये बैठे हैं। कलकल कर बहती हुई नदी का पानी सरदी के मारे धीरे २ जमता जा रहा है। आसपास के पृष्ठ सरदी का अधिकता से

जल कर सूने झारहे हैं। हवा बेरोक जहाँ चाहती है वहाँ जाता है, कोई उसे रोकने वाला नहीं है। ऐसी परिस्थिति में भी मुनिराज नामिका के अथ भाग पर दृष्टि जमाये बैठे हैं। शरीर पर कोई वस्त्र नहीं है। शिवाग्रों के सिवाय उनके शरीर को ढकने का कोई साधन नहीं है। वे स्थिर हैं उनके श्वासोच्छ्वास की गति इतनी मंद है कि कठिनता से उनकी सचेतना जान पड़ती है। मग गृह नीचे लिन्या हुआ पग गा गा कर मुनिराज को स्तुति कर रहे हैं —

जय शीत काज नुषार में, दादे सकल वनराज ।  
जब जमहि पानी पोखरा यहरहि सबही फाय ॥  
तिस काल मुनिबर तर तपे, ठाढ़े रही तर तौर ।  
वे साधु मेरे भन बसो, मेरो हरो पादक पीर ॥

राजा रानी ने भक्ति भाव से मुनिराज की बंदना की। रानी बेतना का हृदय इस कठोर तप को देख कर काँप उठा।

सजे सजाये कमर में राजा और रानी बेतना गरम गहो पर लिहाफों में लिपटे लिपटाये पड़े हैं। बाग़ी तरफ से दरवाजे और खिड़कियाँ बंद हैं। बड़ी कठिनता से ठंडी हवा उसमें आ जा सकती है, परन्तु इतनी सी हवा के मारे भी वे अपने शरीर के किसी भी भाग को लिहाफ के बाहर निरालने में असमर्थ हैं।

नींद की बेहोरी में रानी बेतना लिये लिहाफ स बाहर निकल गई सोलंकार कर अपना

सुणो के और

उसे मुनिराज का ख्याल आया। जिस परिस्थिति में वे बैठे थे, उसकी तस्वीर उसकी आँसुओं में धुस गई। उसका हृदय दया से परिपूर्ण हो गया। उसके मुख से निश्वास के साथ सहसा शब्द निकल पड़े, अरेरे ! उन विचारों की क्या गति होगी ? भगवान् उनकी रक्षा करें।”

दैव-योग से राजा श्रेणिक भी उस समय जाग गया था। उसके कानों में रानी के ये शब्द पड़े। मनुष्य का पापी मन सदा शंकाओं से परिपूर्ण रहता है। उस शंका हुई “हो न हो रानों का किसी पुरुष से सब ध है, जान पड़ता है वह मामूली आदमी है। उसके सदा से बचने के साधन नहीं हैं, इसी लिये रानी को उसकी चिन्ता हो रही है। अरेरे ! स्त्रियाँ कितनी दुश्चरित्रा होती हैं। मेरी रानी खेलना धम प्राणा है, वह भी जब चारित्र्य हीन है, तप और रानियों की तो बात ही क्या है ?”

इधर राजा इस तरह के विचार कर रहा था, उधर रानी खेलना अपने मन में मुनिराज के तप-त्याग का विचार करती हुई लिहाफ को चारों तरफ से अपने नीचे दृश रही थी और सदा से बचने का उपाय कर रही थी।

आज श्रेणिक का मन किसी काम में नहीं लग रहा है, वह बैचैनी के साथ इधर उधर टहल रहा है, उसके हृदय में तृष्णन सठ रहा है, वह क्या करे ? कैसे इन दुश्चरित्रा रानियों से अपना पीड़ा छुड़ाये ? कैसे वह अन्तःपुर की पवित्रता को सुरक्षित रखे।

टहलता टहलता वह अचानक खड़ा हो गया,

७६ और भुक्ता देने से बढ़कर दूसरी कोई बुलाई नहीं है

को बुलाया। नोकर हाथ जोड़कर सामने आ खड़ा हुआ। हुक्म दिया "जाओ अभयकुमार मंत्री को इसी समय बुला लाओ।"

मंत्री अभयकुमार चुपचाप आया और अभिवादन कर सामने खड़ा होगया। उसने देखा कि राजा की आँखें क्रोध के मारे लाल हो रही हैं। उसी की आकृति उसके हृदय के अर्थकर विचार प्रगट कर रही है। राजा टहलता हुआ खड़ा हो गया और बोला "मंत्री।"

मंत्री ने हाथ जोड़ सिर झुका बड़े ही कोमल स्वर में कहा "अन्नदाता।" राजा को यह कोमल स्वर अन्धा न लगा, उसने कहा "इसी समय सारा अन्त पुर जलकर खाक हो जावे।"

अभयकुमार का दयालु हृदय काँप उठा। उसने काँपते आवाज में कहा "अन्नदाता की जैसी आशा। पर "राजगर्जा, "पर वर कुछ नहीं। इसी समय हुक्म की तामील होवे जाओ।"

मंत्री खिन्न हृदय के साथ र-नाना हुआ। राजा ने पुन उसे बुलाया और कहा "चेलना रानी "राजा कहता २ क गया। फिर बोला, "जाओ कोई स्त्री जो अन्त पुर में है जो कि न रहने पावे। मैं भगवान महाबोर के दरान को जाता हूँ। मैं वापिस लौटने पर मुझे अन्त पुर की राख दिखाई देवे। खरदार कोई बचन न पावे।"

## प्रश्नावलि

- (१) यशोधर मुनि की परिस्थिति का वर्णन अपने शब्दों में करो ।
- (२) भक्त-जन कौनसा छंद पढ़ रहे थे ?
- (३) राजा भेषिक को चलना के शील में क्यों और कैसे सचेत हुआ ?
- (४) राजा भेषिक ने अपने मंत्री अभयकुमार को बुलाकर क्या आशा की ?

## रानी चेलना (आ)

बुद्धिमान मंत्री अभयकुमार राजा भेषिक की कठोर आशा को सुनकर बड़ा चकरा म पड़ा। वह क्या करे ? राजा की आशा उसे अन्याय मालूम हो रही थी। वह समझ रहा था कि किसी एक के अपराध में सारी रानियाँ निरपराध मारी जा रही हैं। पर अपराधी का पता लगाना भी तो कठिन था।

अन्त में उसने निश्चित किया कि रात को राजा जिस रानी के महल में रहे हो वहाँ धूल कर इसका पता लगाना चाहिये।

तलाश करने पर मालूम हुआ कि राजा रात को रानी चेलना के महल में थे। चेलना का नाम सुनकर मंत्री को विश्वास हो गया कि राजा को कोई भारी भ्रम होगया है और उनी के कारण राजा ने ऐसी भयकर आशा दी है। रानी चेलना कोई...



अपराध नहीं कर सकती, तो भी इसकी जाच तो होनी ही चाहिये।

मंत्री रानी चेलना के पास गया और बड़े ही विनय पूर्ण स्वर में बोला “माता। आज राजाधिराज क्रुद्ध मालूम होते हैं, क्या आपको इसका कोई कारण मालूम है। राजा के क्रोध की बात सुनकर रानी का मन उद्विग्न हुआ। उसने गत-रात्रि की सारी बातें एक एक करके याद कीं और कहा “रात को ऐसी कोई बात नहीं हुई जिसमें महाराज नाराज होते।”

अभयकुमार बोला “मा क्या आप मुझे रात को सारी बातें सुनाने की छुपा करेगी ?”

रानी की खोरियों में बल पड़ गया। मंत्री समझ गया। यह मधु से भी मीठे शब्दों में बोला “मा नाराज न हो। मुझे महाराज ने आज्ञा दी है कि मैं सारे अन्त-पुर को रानियों सहित जलाकर भस्म करदूँ। मैं समझता हूँ कि यह अन्याय है। फिर भी मैं उनका आज्ञा पालक सेवक हूँ। इस लिये आज्ञा पालना ही मेरा कर्तव्य है। पर माता, मैं पुत्र भी हूँ जैसे मेरे लिये पिता की—राजा की आज्ञा मानना कर्तव्य है वैसे ही अपनी माताओं की रक्षा करना भी मेरा कर्तव्य है। मुझे पूरा निश्वास है कि राजा को कोई धाति हुई है और उसीके बराबर ही कर उन्होंने ऐसी आज्ञा दी है।

रानी चेलना बोली “अभय। तुम मेरा महल सुलगाओ। रातको यदि कोई अपराध हुआ होगा तो वह मुझसे या मेरे ही महल में रहने वाली किसी से। इससे तुम याय-युक्त काम

करो। महाराज यह खान कर तुम पर प्रसन्न होने कि तुमने अपराधी को दंड दिया है।”

यह कहकर रानी “अर्ह त अर्हन्त” बोलने लगे। मंत्री विचार में पड़ा। कुछ देर बाद बोला “माता क्या आप

रानी बरा स्नेहयुक्त स्वर में बोली “जाओ बत्स अपना कृत्य करो। महाराज कभी अयाय-मूलक आज्ञा नहीं देते। संभव है मैं भक्तिमद अपराध करके भी उसे नहीं समझ सही हूँगी। वे तो हमारे पूज्य हैं, स्वामी हैं। अपनी दासी को दंड देने का हुक्म देते समय संभवतः भूल से सारा अंत पुर शब्द छूट मुँह से निकल पड़ा होगा, या तुमने ही अर्हन्ति बरा सारा अंत पुर समझ लिया होगा। जाओ महाराज की प्रिय रानी का हुक्म है कि चेलना के सिवाय किसी रानी का महल न जलाया जावे।”

। “माता।”

“वस अभयकुमार। अब अधिक समय न लो। मुझे भगवान का स्मरण करन दो।” अभयकुमार निरारा होकर वहाँ से चल दिया। रानी चेलना ने चारों शरण प्रार्थना किए। सर्व योगों का त्याग किए और पद्मामन लगा, माया-ममता से विच-वृत्ति हटा, आत्म चिन्तन में मन लगाया।

अभयकुमार ने बहुत कुछ सोच विचार के बाद महलों के पास कुछ पास की बनी हुई मीपड़ियों की जन में आग लगवादी और महाराज को उसकी सवर देने को कहा।

रानी श्रेयिक का मन बड़ा व्याकुल हो

महावीर स्वामी से पूछा, “श्रेयो ! मेरी रानी चेलना कैसे कुलटा बन गई ?”

महावीर स्वामी ने उत्तर दिया “श्रेणिक तुम्हें झॉति हुई है रानी चेलना मनसा, वाचा, कर्मा सभी तरह से सती है। रात उसने कहा था “अरे रे”। उन विचारों की क्या गति होगी ? भगवान् उनकी रक्षा करो। यह वाक्य उसने उन मुनिराज के लिए कहा था जिनके दर्शन तुम राजगृही में वापिस जात हुए कर गए थे। श्रेणिक चेलना ही क्या तेरे अन्त पुर की जितनी रानियाँ हैं, सभी सती हैं, वृ अपनी राका को दूर कर।”

श्रेणिक अपनी भूल पर पछताया और वहाँ से रवाना हुआ। घोड़े को सरपट मगा दिया। रास्ते में अभयकुमार मिला, राजा ने घोड़ा रोक लिया और पूछा अभयकुमार क्या किया ?”

अभयकुमार बोला “महाराज की आज्ञा का पालन हुआ।”

राजा बोला “तुम रुके भूलें हो, निर्दोषों को सुलगा दिया। जाओ सुखे अपना मुँह न दिखाओ।”

राजा ने घोड़े का घाबुड़ लगाया, घोड़ा हवा हो गया। महल में पहुँचकर राजा ने देखा कि अन्त पुर सुरक्षित है। पास की कुल्ल कोपड़िया जली हुई हैं। वह अभयकुमार की बुद्धिमत्ता की और अपने सौभाग्य की प्रशंसा करता हुआ चेलना के महल में पहुँचा।

उसने देखा रानी स्थिर पद्मासन लगाये बैठी है। घोरे २ “अहन्त अहन्त” शब्द निकल रहा है और सभी इन्द्रियाँ शून्य हो रही हैं।

ससने पुकारा "सती, सती ! राजा ने कोई उत्तर न दिया। राजा ने थोड़ा ठंडा पानी मगवाया और सती की आँखों पर छिड़का। कुछ क्षण के बाद सती ने आँखें खोलीं। सामने स्वामी को देख बोली "नाथ क्या आपने दासी को क्षमा कर दिया ?"

राज बोला, सती सती मुझे क्षमा करो मेरे पारी मन ने तुम्हारे चरित्र पर शक की। सती इस अपराध को क्षमा करो। अपने सतें धूल से मेरी रक्षा करो।

### प्रश्नावलि

- १) मंत्री अमय कुमार ने राजा श्रेणिक की आज्ञा का पालन कैसे किया ?
- २) राजी चेतना ने अंत पुर में आग लगाने के संबन्ध में अमय कुमार से क्या कहा ?
- ३) राजा श्रेणिक ने भगवान महावीर से चेतना के शील के संबन्ध में क्या प्रश्न पूछा और भगवान ने क्या उत्तर दिया।
- ४) राजा श्रेणिक ने अपनी मूल पर कोई परिचाताप किया या नहीं किया तो क्या ?
- ५) अंत में राजी चेतना ने श्रेणिक को कैसे क्षमा महान की ?

# १ वीर शासन जयन्ति (चाल-ते गुरु मेरे उर बसो)

- बाणी खिरी महावीर की, पुण्य तिथि है आज ॥ टेक ॥  
 शुक्ल दर्श वैशाख की, पायो केवल शान ।  
 सौका लोक निहारियो, दर्पण ज्यों भगवाम ॥ १ ॥ वा०  
 जिन धुनि अथ विस्तरी, इन्द्र भयो-हरान ।  
 धीते दिवस छियासठै, कारण कवन महान ॥ २ ॥ वा०  
 इन्द्र अथधि तप जोड़ियो, दूर भयो सदेह ।  
 बिन गण घर धुनि ना खिटे, जानो निश्चय यह देह ॥ ३ ॥ वा०  
 इन्द्र निहारो ज्ञान में, गौतम विप्र महान ।  
 गण घर होसी वीर को, चाल्यो सुरत सुजान ॥ ४ ॥ वा०  
 छात्र सुभेष चराय के, पटुच्यो ताकी राखि ।  
 गौतम विप्र साँ पूछियो अद्भुत प्रश्न विराल ॥ ५ ॥ वा०  
 गौतम परिहृत भाषियो, तेरा गुरु है कोय ।  
 बाद करूँ मैं तास सों, वेग मिलाओ मोय ॥ ६ ॥ वा०  
 इन्द्र कहो 'श्री वीर जिन; मेरे सतगुरु देव ।  
 वीतराग सबस हैं, सुर नर करते सेव ॥ ७ ॥ वा०  
 गौतम परिहृत चालियो, संग है शिष्य अषार ।  
 मान गलित तत्क्षण भयो, मान स्वयं निहार ॥ ८ ॥ वा०  
 वीर चरण में जा पड़ो, जागो अतम ज्ञान ।  
 मुख्य गणघर प्रभु वीर का, गौतम भयो महान ॥ ९ ॥ वा०  
 जिन धुनि तवहिं सुविस्तारी, षोडशीगण घर देव ।  
 इन्द्राग तप गूधियो, जीव अजीव सुभव ॥ १० ॥ वा०

तब अहिंसा भावियो, भाव्यो कर्म सिद्धान्त ।

स्वाग्रह प्रगटायके, नष्ट कियो एकान्त ॥ ११ ॥ बा०

बिहरत वैश विवेरा में, दीनों हित उपदेरा ।

भारम मुक्ति दिस्वाइयो, होगये सिद्ध परमेरा ॥ १२ ॥ टेक

वर्तत शासन बोर को, अजहूँ करत कन्याण ।

ज्ञान जयन्ति मनाइये, प्राप्त करो 'शिव' यान ॥ १३ ॥ टेक

## प्रश्नावलि

(१) बाणी बिरना, किसे कहते हैं ?

(२) भगवान महावीर को केवल ज्ञान किस तिथि को हुआ ?

(३) भगवान वीर की बाणी केवल ज्ञान होने से कितने

दिन बाद किस तिथि को खिरी ? ऐसा क्यों हुआ ?

(४) इन्द्रभूति कौन था ? इन्द्र का और उसका क्या वार्ता-

काप हुआ ?

(५) मान रखम क्या होता है ? इन्द्र भूति का मान कैसे

गलित हुआ ।

(६) भगवान वीर के समक्ष राण में जाकर इन्द्र भूति के

साक्ष क्या हुआ ? वे क्या बन गये ?

(७) गणघर किसे कहते हैं ? उन में क्या विशेषता होती है ?

(८) भगवान वीर के मुख्य २ सिद्धान्त बताओ ।

(९) वीर शासन जयन्ति कैसे और क्यों मनानी चाहिये ?

## सम्यक् ज्ञान

जैसे सम्यक्-दर्शन गुण आत्मा का स्वभाव है वैसे ज्ञान गुण भी आत्मा का स्वभाव है। सम्यक्-दर्शन सहित ज्ञान को सम्यक् ज्ञान कहते, परन्तु हैं दोनो जुग २। इन दोनो के लक्षण में भेद है। सम्यक्त्व का लक्षण भ्रमा न करना है और ज्ञान का लक्षण ठीक २ जानना है। सम्यक्-दर्शन कारण है और सम्यक्-ज्ञान कार्य है। यद्यपि ये एके ही समय में होते हैं तो भी इन में कार्य कारण का भेद है, जैसे दीपक जलने के साथ ही प्रकाश होता है पर दीपक प्रकाश का कारण है। बिना सम्यक्त्व अधीन सभी भ्रमा हुए बिना ज्ञान को सम्यक् ज्ञान नहीं कहते। इसीलिये सम्यक्-दर्शन कारण है और सम्यक्-ज्ञान कार्य है।

वस्तु के स्वरूप को ठीक २ जैसा है वैसा जानना न कम जानना, न अधिक जानना, विपरीत नहीं जानना और सराय-रूप नहीं जानना, ऐसे जानने का नाम सम्यक्-ज्ञान है ज्ञान का काम मात्र जानना है, मात्र प्रकाश करना है।

तत्त्व ज्ञानी सम्यक्-दृष्टि का यह ज्ञान है कि मैं निश्चय से परमात्मा अत शुद्ध निर्विकार ज्ञानदृष्टा हूँ, आत्म ज्ञान कहलाता है, यही ज्ञान परम सुख साधन है। इस आत्म ज्ञान को ही निश्चय-सम्यक्-ज्ञान कहते हैं।

इसा आत्म ज्ञान या निश्चय ज्ञान की प्राप्ति के लिये शास्त्र के द्वारा छह द्रव्य, १ चारितार्थ, सात तत्त्व और नव पदार्थों का ज्ञान जरूरी है। इस शास्त्राभ्यास का नाम व्यवहार सम्यक्-

है। जिन धाणी में बहुत से शास्त्र हैं उनको चार अनुयोगों में बाँटा दिया गया है, जिनको चार वेद भी कहा जा सकता है।  
 1) तानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग।

1) प्रथमानुयोग—प्रथम अवस्था के कर्म ज्ञान वाले शिष्यों को तत्वज्ञान की रुचि कराने में जो समय हो उस को प्रथमानुयोग कहते हैं। इस में उन महान पुंसों के और महान स्त्रियों का जीवन चरित्र है जिन्होंने धर्म धारण करके अपने आत्मा की रक्षा की है। इसमें उनके भी चरित्र हैं जिन्होंने पाप बाँध कर उठाया है व जिन्होंने पुण्य बाँधकर सुखसाता कारी साधन त किया है। इससे यह शिक्षा मिलती है कि हम को भी पाप त्याग करना चाहिये और धर्म का साधन करके अपना हित लेना चाहिये। इस योग के प्रथम आदि पुराण हरिवंश पुराण, स्कंद पुराण आदि हैं।

2) करणानुयोग—करणानुयोग में लोकाकारा अलोकाकारा अलविभाग, नरक, तिर्यक, मनुष्य, देवरूप चारों गतियों के समय का वर्णन है। कर्म क्या है? कर्म कैसे बंधते हैं, कैसे जन्म का संक्रयण होता है, मोक्ष क्या है, शुद्ध ध्यान क्या है इत्यादि वर्णन करणानुयोग में पाया जाता है। आत्म ज्ञान के लिये करणानुयोग बड़ा सहायक है। इस योग के प्रथम गोमटसार तन्त्रिसार, क्षपणसार त्रिलोकसार आदि हैं।

चरणानुयोग—निरवय चरित्र की प्राप्ति के लिये जिस रीति व्यवहार चरित्र की जरूरत है वह सब चरणानुयोग में बताया



गया है, मुनि का चरित्र क्या है, गृहस्थ का चरित्र क्या है, यह सब विस्तार से चरणानुयोग के मन्थों में ही बताया गया है। ऐसे ढंग से कि हर एक मनुष्य अपने-अपने पद और योग्यतानुसार उच्च चरित्र का पालन कर सके और न्यायनीति से गृहस्थ के कर्तव्यों का करते हुए अपने सद्व्यस्य सुख का साधन कर सके यह सब कथन कि किस २ चरित्र के पालन से वैराग्य अधिक बढ़ता है, आत्म बल की वृद्धि होती है, आत्म ज्ञान की अधिक अधिक सिद्धि होती है, चरणानुयोग के मन्थों में पाई जाती हैं—चरणानुयोग के मन्थ मूलाधार, आचारधार, चरित्रधार, रत्न-करुण आवकाधार इत्यादि अनेक हैं।

(४) द्रव्यानुयोग—इस में छह द्रव्य, पंचारिण्य सात तत्व, नौ भूदायों का व्यवहार नम से पर्याय रूप और निरूपणय से द्रव्य रूप कथन है। इसमें शुद्ध आत्मानुभव के साधन बताया गये हैं जीवन मुक्त होने का भाग बताया गया है—आत्मा से परमात्मा बनने का साधन या उपाय इस अनुयोग में बताया गया है।

इन ऊपर लिखे चारों अनुयोगों के शास्त्रों को नित्य प्रति अभ्यास करना सम्यक् ज्ञान का सेवन है।

### प्रश्नावलि;

- (१) सम्यक् ज्ञान किसे कहते हैं ? सम्यक् इरादों और सम्यक् ज्ञान में क्या अंतर है दृष्टान्त देकर समझाओ।
- (२) निरुपय सम्यक् ज्ञान किसे कहते हैं ?

- (३) जिन शारी को कौन २ से मुख्य चार भेदों में बाँटा गया है उनके नाम बताओ।
- (४) प्रथमानुयोग किसे कहते हैं ? प्रथमानुयोग के कुछ मुख्य २ प्रयोगों के नाम बताओ।
- (५) चतुर्थानुयोग से आप क्या समझते हैं ? मुख्य २ प्रयोगों के नाम बताओ।
- (६) करणानुयोग में क्या विषय है ? उसका मुख्य २ प्रमुख कौन से हैं ?
- (७) द्रव्यानुयोग में किस विषय का कथन है, आजकल उपलब्ध मुख्य ग्रंथ कौन २ से हैं ?
- (८) सम्यक्-ज्ञान की सेवा क्या है ?

## सम्यक् ज्ञान के आठ अंग

जैसे सम्यक् दर्शन के आठ अंग हैं, वैसे सम्यक् ज्ञान के आठ अंग हैं, यदि आठ अंग के साथ शास्त्राभ्यास किया जावेगा तो ही ज्ञान की वृद्धि होगी, अज्ञान का नाश होगा और भावों की शुद्धि होगी कर्षणों की मद्धता होगी, संसार से राग घटेगा वैराग्य बढ़ेगा, सम्यक् की निर्मलता होगी। आठ अंगों को ध्यान में रखते हुवे शास्त्रों का अभ्यासी मन बचन कायको सीन करलेता है, पढत २ आत्मानन्द की छटा जाती है।

सम्यक् ज्ञान के आठ अंग ये हैं—

- (१) ध्यंजनं बुद्धि—अर्थात् मन्त्र बुद्धि—शास्त्र के वाक्यों का शुद्ध पढ़ना, ठीक २ सही उच्चारण करना। जब

तक शुद्ध नहीं पढ़ेंगे तब तक उसका अर्थ समझ में नहीं आयेगा।

(२) अर्थ श्रुद्धि—शास्त्र का अर्थ ठीक २ समझना—मन्थ के बनाने वाले आचार्य महाराज ने जो भाव प्रथ में भरा है उसको ठीक २ समझना अर्थ श्रुद्धि है।

(३) उभय श्रुद्धि—अर्थ का शुद्ध पढ़ना और उसके अर्थ को शुद्ध समझना। दोनों बातों का ध्यान एक ही साथ रखना उभय श्रुद्धि है।

(४) काला ध्ययन—शास्त्रों को सदा योग्य समय पर पढ़ना, शास्त्रों को ऐसे समय पर पढ़ना चाहिये जब परिवायो में निराकुलता हो। सध्या का समय आत्य ध्यान तथा सामौखिक करने का होता है उस समय को सबेरे दोपहर तथा शाम को बचा लेना चाहिये। जब कोई घोर आपत्ति का समय हो तूफान आ रहा हो भूकंप आ रहा हो, घोर कलह या युद्ध हो रहा हो, किसी महान पुष्प के मरण का शोक मनाया जा रहा हो, ऐसे आपत्ति के समय पर शास्त्र पढ़ने में सवयोग नहीं लगाता, उस समय पर तो शान्ति के साथ ध्यान करना ही योग्य है।

(५) विनय—शास्त्र को बड़े आदर से पढ़ना चाहिये शास्त्र पढ़ते समय बड़ी भक्ति और प्रेम होना चाहिये। शास्त्र पढ़ते समय भावना होनी चाहिये कि मेरे जीवन का समय सफल हो, मुझे आत्य ज्ञान की प्राप्ति हो।

(६) उपपान—वारदा सहित मन्त्र को पढ़ना चाहिये, जो कुछ पढ़ा जावे, वह भीतर अगा जावे, यदि पढ़ते चले गये भीर छोड़ें बात ध्यान में नहीं अभी तो ध्यान तो भिन्ना नहीं, हृम बदा होगा। यह अंग बदा जरूरी है, हान का प्रक साधा है।

(७) पदुमान—शास्त्र को बड़े मान प्रतिष्ठा से ऊंची चौकी पर विपुमान करके साधन से बैठ कर पढ़ता धारना शक्ति है। शास्त्रों को अण्डे २ गुरुर गणों तथा वेष्टनों से मूर्धन करके पेशी अन्मारियों में सुरक्षित रणा जावे जहाँ शिमक, पूरे आदि बनको चिगाइ न सके।

(८) अनिन्द्य—यदि अपने को शास्त्र ज्ञान हो और छोड़ें बखरी शक्ति हमसे कुछ पूछ तो बन्ना देना चाहिये, समझ देता चाहिये, दिवान्त नहीं चाहिये, जिस गुद से या जिस शास्त्र से ज्ञान प्राप्त किया हो वृष्टा नम न दिपावे।

यह सम्बद्ध हान के आठ अंग करलाते हैं, एम आठों अंगों सहित जो शास्त्रों का अभ्यास करता है, मनन करता है, वह अन्तरात् सम्बद्ध हान का सेवन करता हुआ निरपय सम्बद्ध ज्ञान को प्राप्त कर लेगा है।

## प्रश्नोत्तर

(१) सम्बद्ध ज्ञान के आठ अंग कौन कौन से हैं। इनके उद्देश्य क्या हैं।

(२) व्यंजन, शुद्धि, अर्थशुद्धि और समयशुद्धि से आप क्या समझते हैं ? दृष्टान्त देकर समझाओ ।

(३) कालाध्ययन किसे कहते हैं ? किस समय कैसे २ और कौन से ग्रन्थ पढ़ने चाहिये ?

(४) शास्त्र की विनय क्या है ?

(५) उपमान किसे कहते हैं-१

(६) बहुमान और अनिन्दव अंग का स्वरूप समझ कर बताइये ।

## ज्ञान के आठ भेद

प्रमाण ज्ञान के मुख्य, पाँच भेद बताये गये हैं—मति ज्ञान, भुक्ति ज्ञान, अवधि ज्ञान, मनः पर्यग्रज्ञान और केवल ज्ञान । मति ज्ञान, भुक्ति ज्ञान और अवधि ज्ञान ये तीनों ज्ञान मिथ्यादृष्टि और सम्यक्दृष्टि, दोनों के हो सकते हैं और मन पर्यग्र ज्ञान और केवल ज्ञान यह, दो ज्ञान सम्यक्दृष्टिक ही होते हैं । मिथ्यादृष्टि का ज्ञान कुज्ञान अर्थात् खोटा ज्ञान कहलाता है इससे मति, भुक्ति और अवधि यह तीन ज्ञान जब मिथ्या दृष्टि के होते हैं तब कुमति कुभुक्ति और कुअवधि कहलाते हैं । इस प्रकार इन तीनों कुज्ञान को मिथ्यादृष्टि ज्ञान के आठ भेद होजाते हैं ।

मतिज्ञान—पाँच इन्द्रियों और मन की सहायता से सीधे

पदार्थ का जानना मतिज्ञान है—मति ज्ञान से पदार्थ को रस ही जाने हुये पदार्थ के सर्वेष में और विरोध बात को जानना प्रतिज्ञान है। जैसे ठंडी हवा ने हमारे शरीर को जब छूना तो हमने तब ही हाँडू के द्वारा हवा के ठो पने को जाना, यह तो मति ज्ञान हुआ परंतु यह जानना कि यह ठंडी हवा लाभदायक है या हानिकारक, यह प्रतिज्ञान है। रसना इन्द्रि के द्वारा पेदे के भीठेपन का स्वाद का ज्ञान होना मतिज्ञान है फिर चलने वाले के लिये संसके सुखदाई या दुखदाई होने का ज्ञान होना प्रतिज्ञान है। भँवरे को सुगंधित फूल की खुशबू का जानना मति ज्ञान फिर उस सुशब्द से लिपकर फूल की ओर जाने की बुद्धि का होना प्रतिज्ञान है। पतंगे को धौल से दीपक का जलना देखकर ज्ञान होना प्रतिज्ञान है, यह मानना है कि दीपक हितकारी है या अहितकारी यह प्रतिज्ञान है। कानों से बाजे की आवाज का सुनना मतिज्ञान है फिर यह जानना कि यह आवाज हारमोनियम की है युत ज्ञान हुआ। मति ज्ञान और प्रतिज्ञान प्रत्येक जीव के होता है, कोई भी जीव इन दो ज्ञानों से बचा हुआ नहीं है। इतना जरूर है किसी जीव में यह ज्ञान ज्यदा होते हैं और किसी में कम। निगोदिया जीव को एक अक्षर के अनतवे मात्र अर्थात् काममात्र ही ज्ञान होता है।

अथवि ज्ञान—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा को किये हुये रूपी पदार्थ अर्थात् सुदृगल पदार्थ को या पुदृगल सहित अमृदु जीवों का चरण बिना इन्द्रियों की सहायता आरभीक

कि सं जानना अवधि ज्ञान है। देव, नारकी और श्री तीर्थकर-  
गवान के यह ज्ञान जन्म दिन से ही होता है, इस कारण इन  
तीनों के अवधि ज्ञान को भव प्रत्यय अवधि ज्ञान कहते हैं,  
वेनी पचेन्द्रिय जीव को जिसकी इन्द्रियाँ पूर्ण हो, किसी गुण  
के कारण अर्थात् किसी ज्ञान तप के फल से यदि अवधि ज्ञान  
प्राप्त हो जावे तो उस को गुणप्रत्यय अवधि ज्ञान कहते हैं।

मन पर्यय ज्ञान—दूसरी के मन में सुदृगल या अशुद्ध जीवों  
के सबध में कभी जो विचार किया जा चुका है, या भव चल  
रहा है या आगे कोई विचार होगा, उस सबको भात्मा द्वारा  
जानना मन पर्यय ज्ञान है। यह ज्ञान अवधि ज्ञान से ब्यादह  
निमल है, यह ज्ञान बहुत सूक्ष्म बातों को जान सकता है, जिनको  
अवधि ज्ञानी भी न जान सके। यह ज्ञान ध्यानी तपस्वी सम्यक  
दृष्टि महात्माओं तथा योगीश्वरों के ही होता है।

केवल ज्ञान—यह ज्ञान ज्ञान को ढकवेने वाले कर्म ज्ञान-  
वरण के क्षय होने पर होता है, स्वाभाविक पूर्ण ज्ञान है, लोक  
अलोक की भूत भविष्यत् और वर्तमान सर्व वस्तुओं को और  
सब गुणवर्त्याओं को एक साथ जानने वाला है, इस ज्ञानमें किसी  
वस्तु का जानना बाकी नहीं रहता है। यह ज्ञान एक बार प्रकाश  
होने पर फिर मलीन होता नहीं सदा ही अपने शुद्ध स्वभाव में  
प्रगट रहता है यह ज्ञान अरहन्त परमेष्ठी तथा सिद्ध परमेष्ठी में  
प्रगट चमकता रहता है संसारी जीवों में प्रगट नहीं है, शक्ति  
रूप से रहता है।

इन ऊपर बताये पाँचो ज्ञानो में से, अवधि मनपर्यय और  
 केवल यह तीन ज्ञान इन्द्रियो के सहारे बिना आत्मीकरोकि  
 साक्षात् रूप होते है इस लिये इन को प्रत्यक्ष कहते हैं और भक्ति  
 ज्ञान और श्रुति ज्ञान ये दो ज्ञान मन और इन्द्रियो के द्वारा होते  
 है, इस लिये इनको परोक्ष कहते हैं।

१११

इन ज्ञानो में अत ज्ञान ही एक ज्ञान है जिससे शास्त्र ज्ञान  
 होकर आत्मा का भेद विज्ञान होता है। यह आत्मा कर्मों से  
 मुक्त है, सिद्ध परमेष्ठी के समान शुद्ध है। जिसको  
 आत्मानुभव हो जाता है वही भाव श्रुति ज्ञान को पा सता  
 है। मन पर्यय ज्ञान और अवधि ज्ञान तो रूपी पदार्थों को ही  
 जानते हैं, श्रुत ज्ञान अरूपी पदार्थों को भी जान सकता है।  
 श्रुत ज्ञान के बल से केवल ज्ञान हो सकता। इस लिये श्रुत ज्ञान  
 प्रधान है। ऐसा जान कर हमें चाहिये कि शास्त्र ज्ञानका अभ्यास  
 करते रहें, जिससे आत्मानुभव मिले येही सद्म सुख का साधन  
 है, येही केवल ज्ञान का प्रकाशक है। जिन पानी को खूब पढ़ना  
 चाहिये यह पदार्थों के यथाय स्वरूप को बताने वाली है, पूर्वा  
 पर विरोध रहित है शुद्ध है, विशाल है अत्यंत दृढ़ है अनुपम  
 है प्राणीमात्र की हितकारिणी है और रागादि मल को हरण  
 करने वाली है इसके पढ़न पाठन से आत्महित का बोध होता  
 है, संयत आदि गुणों की दृढ़ता होती है, नया नया धर्मानुराग



छपदेरा देने की योग्यता जाती है—परंपरायसे आत्म ज्ञान की प्राप्ति कष्ट परममद को प्राप्त कराने वाली है।

## प्रश्नावलि

- १) ज्ञान के मुख्य भेद कितने हैं ? उनके नाम बताओ
- २) मिथ्या दृष्टि के कौन से ज्ञान दोसकते हैं ?
- ३) मति ज्ञान और श्रुतिज्ञान का स्वरूप समझो इन दोनों में से पहिले कौदा सा ज्ञान होता है ?
- ४) निगो दिया जीवन के कितना ज्ञान कम से कम होता है।
- ५) अर्वाच ज्ञान से आप क्या समझते हैं-?
- ६) भवमन्यय अर्वाच और शुद्ध प्रत्यय अर्वाच ज्ञान की व्याख्या करो।
- ७) मन पर्यय ज्ञान किसे कहते है ?
- ८) केवल ज्ञान का स्वरूप बताओ
- ९) प्रत्यक्ष ज्ञान किसे कहते है ? और परोक्ष ज्ञान किसे कहते है कौन से २ ज्ञान प्रत्यक्ष हैं और कौन कौन से परोक्ष है।
- १०) श्रुत ज्ञान में क्या विरोधवादे ?

## सम्यक्-ज्ञान की महिमा

इस जगत में जीवो को सुख का देने वाला ज्ञान के बराबर और कोई दूसरा पदार्थ नहीं है, यह ज्ञान उत्तम अमृत के समान है इष ज्ञानामृत के पीने से हो जन्म जरा और मरण को एक

सखारी जीव के लिये भयानक रोग हैं, दूर हो जाते हैं। ज्ञान के बिना अज्ञानी जीव करोड़ों जन्मों में तप करके जितने कर्मों को दूर करता है उतने कर्मों को ज्ञानी जीव एक ही माय में अपने मन, बचन कर्म को रोक करके सहज में नारा कर देता है। इस जीव ने धन-तबार मुनिव्रत धारण किया और प्रेयेक विमानों में भी गया, परन्तु आत्मज्ञान न होने के कारण उसे जरा भी सुख की प्राप्ति नहीं हुई।

सम्यक्-ज्ञान के अभ्यास से राग द्वेष मोह गिरता है, समता भाव प्रागृत होता है, आत्मा में रमण करने का उपाय पड़ता है, सहज सुख का साधन बन जाता है, स्वानुभाव प्रागृत हो जाता है। परम धैर्य प्रकाश होता है। यह जीवन परम सुन्दर सुवर्णमय हो जाता है। ज्ञानाभ्यास के बिना कथाओं की मंदता नहीं होती। व्यवहार की शुद्धता, परमाय का विचार आगम की सेवा से ही होते हैं। सम्यक् ज्ञान ही जीव का परम बन्धु है, ये ही उत्कृष्ट धन है, परम मित्र है। सम्यक् ज्ञान ही अविनाशी धन है। स्वदेश में, परदेश में, सुख में, दुःख में, आपदा में, सम्पदा में, परम शरण भूत सम्यक् ज्ञान ही है। यह एक स्वाधीन, अविनाशी धन है। पापों इन्द्रियों के विषयो से विरक्त होकर विनय भक्ति सहित ज्ञान की भावना करने से आत्म कल्याण होता है, मनुष्य जन्म का सार भी ये ही है कि सम्यक् ज्ञान की भावना की जाने और अपनी शक्ति को न बिपा कर संयम को धारण किया जावे। आत्म कल्याण के चाहने वालों के लिये

जैहरी है कि वह ध्यान और स्वाध्याय के द्वारा सदा ज्ञान का मनन करते रहे और तप की रक्षा करे। जिसके हृदय में ज्ञान सूर्य का चजियारा प्रकाशमान रहता है, उसके हृदय में मोहरूपी घोर अंधकार टिकने नहीं पाता। घन्य है वे पुरुष जिनका जन्म गुह की सेवा में बीतता है, जिनका मन घम ध्यान में लीन रहता है और जिनका शास्त्र अभ्यास साम्यभाव की प्राप्ति के लिये काम में आता है। स्वाध्याय करने वाले के स्वाध्याय करते समय पाँचो इन्द्रियें बस में होती हैं, मन, बचन काय स्वाध्याय में रत होजाते हैं, ध्यान में एकाग्रता होती है, विनय गुण की वृद्धि होती है, स्वाध्याय या ज्ञानाभ्यास परम उपकारी है शास्त्र का अभ्यासी पुरुष प्रनाद का दोष होते हुवे भी संसार में पतित नहीं होता, अपनी रक्षा करता रहता है, ज्ञान बड़ी अपूर्व वस्तु है। वे ही मुनिराज मोक्षपद के स्वरूप को जानने वाले हैं जो जिन-बाणी को हविषूषक अपने कानो से सुनते हैं जो प्रमाण और नव के शाता हैं और जिनकी मुक्ति विशास है। वास्तव में सत्यक ज्ञान की महिमा विचित्र है। इसलिये जिनेन्द्र-भगवान के कहे हुवे तत्वों और शास्त्रों का अभ्यास करना चाहिये। सराय विभ्रम और विमोह इन तीनों दोषों को छोड़कर आत्मा को पहचानना चाहिये। यह मर भव, उत्तम कुल तथा जिन बाणी का सुनाओ जो पुण्योदय से इस समय मिला है, यदि जैसे ही व्यर्थ में बीत गया तो फिर इनका मिलना जैसा ही कठिन है जैसे समुद्र में गिरे हुवे रत्न का मिलना कठिन है।

यन समान, हाथी, घाडा राव्य आदि कोई अपने आत्मा के काम नहीं आता है । ज्ञान जो आत्मा का स्वरूप है, उसी के प्रकाशित होने पर आत्मा निरञ्ज रहता है, उसे आम ज्ञान का कारण अपने और पर का भेद विद्यान है । इसलिये हे भव्य जीवा ! किरोंडों उपाय करन भी जिस तरह बने उस भेद विद्यान को प्राप्त करो । मुनियों के नाथ जिनेद्र भगवान् ने फर्माया है, कि जितने पहल मोक्ष गये, उन जाते हैं और आगे जायेंगे, उन सबके लिये ज्ञान का प्रभाव ही कारण जानना चाहिये । पचेन्द्रिया के त्रिपयो की दाह एक धधकती हुई अग्नि के समान है, ससार के लोग उन के समान हैं, वह यह अग्नि भस्म किय जा रही है, ऐसी अग्नि को शान्त करने का उपाय सिवाय ज्ञान रूपी मेघों की बपा क और कोई दूसरा नहीं है । हे भव्य जीवो ! घनादिक पुण्य के फल है, उन्हें देखकर हृष मत करो, तथा रोग त्रियोग आदि को पापका फल जान कर शोक मत करो । यह पाप पुण्य पुद्गल रूप कर्म की पर्यायें हैं, जो पैदा होकर नाश को प्राप्त हा जाती हैं और फिर पैदा हो जाती हैं । साराश यह है और लाख बातों की एक बात यह है और तुम उस पर निश्चय लाओ कि जगत् के सब इद फद तोड़ कर ज्ञान का उपाजन करो और आत्म ध्यान का अभ्यास करो । सम्यग्ज्ञान पाप रयी अचकार को दूर करने के लिये सूर्य के समान है, मोक्ष रूपी लक्ष्मी के निवास के लिये कमल के समान है, काम रयी सर्प को कीलने

के लिये मात्र के समान है मन सूखी हाथी को घरा करने के लिये सिंदूर के समान है, समस्त तत्वों को प्रकाश करने के लिये दीपक के समान है और पाचों इंद्रियों के विषयों को पकड़ने के लिये जाल के समान है ।

### प्रश्नावलि

- (१) ज्ञानी और अज्ञानी क तप मं बुद्ध अंतर है या नहीं ? यदि है तो क्या ?
- (२) सम्यग्ज्ञान की महिमा अपने शब्दों में ध्यान करो ।
- (३) सरास, विभ्रम और विमोह से आप क्या समझते हैं ।
- (४) प्रमाण और नय से क्या समझते हो ?
- (५) शास्त्राभ्यास का फल क्या है ?
- (६) भेद विज्ञान किसे कहते हैं ?
- (७) आत्म कल्याण के लिये भेद विज्ञान क्यों जरूरी है ?

### पाठ

#### सारह भावना

( दौलतगमजी कृत-चाल छन्द १४ मात्रा )

मुनि सकल श्रुती बड भागी, भव भोगन तैं वैरागी ।  
 वैराग्य उपासन माई, चित्तें अनुप्रेक्षा भाइ ॥ १ ॥  
 इन चित्तल समसुख जागै, जिमि ध्वलन पवनके लागै ।  
 जब ही जिय आतम जानै, तब ही जियशिवसुख ठानै ॥२॥

### अनिन्य भावना १

जोवन प्रह गोधन नारी, हय गय जन आशाकारी ।  
द्वीय भोग छिन थाइ, सुरघनु चपला चपलाई ॥३॥

### अशरय भावना २

सुर असुर रगविष जेने, मृगज्यो हरि काल दलेते ।  
मणि मन्त्र तन्त्र बहु होई, मरते न बचावै कोई ॥४॥

### समार भावना ३

चहुंगति दुख जीव भर है, परिवतन एच करे है ।  
सब विधि संसार असारा, यामे मुख नाहि लगारा ॥५॥

### एकत्व भावना ४

शुभ अशुभ करम फल जेते, भोगै निय एक ही तेते ।  
सुख दारा होय न सीरी, सब श्वारथ के हैं भीरी ॥६॥

### अन्यत्व भावना ५

चल पय ज्यो जिय तन मेला पै भिन्न भिन्न नहि मेला ।  
तो प्रगट जुदे धन धामा, क्योहैं इक मिल सुतरामा ॥७॥

### अशुचित्व भावना ६

यह रुधिर राध मल मैली, कीकस बसादि तैं मैली ।  
नरदार बड़े पिनकारी, अस देह करैं किम यारी ॥८॥

### आसुर भावना ७

जो योगन की चपलाई, तार्तें बड़े आसुर भाई ।  
आसुर दुखकार घनेरे, बुधपत तिहैं निरखेर ॥ ९ ॥

### सवर भावना ८

जिन पुण्य पाप नहीं कीना, आत्म अनुभव चित दीना ।  
तिन ही विधि आवत रोने, सवर लहि सुख अलोक ॥१०

### निर्जरा भावना ९

निज काल पाय विधि करना, तासो निज काज न करना ।  
तप कर जो कम सिपावै, सोइ शिव सुख दशावै ॥११

### लोक भावना १०

किनहू न करयो न धरयो को पट् द्रव्य मइ न हरे को ।  
ता लोक माहि विन समता, दुख सहै जीव नित भ्रमता ॥१२

### बोधि दुर्लभ भावना ११

अन्तिम शीतलौ की हट, पायो अनंत विरिया ११ ।  
पर सम्यग्ज्ञान न लायो, दुर्लभ निज मे मुनि सायो १३

### धर्म भावना १२

जो भाव माह तैं थारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सार ।  
सो धर्म जवै जिय धारै, तउ ही सुख अचल निहारै ॥१४॥  
सो धम मुनिन करि धरिये, तिन की करतूत उचरिये ।  
तासो मुनके भवि प्राणी, अपनी अनुभूति पिछानी ॥१५

### प्रश्नावलि

- (१) भावना किसे कहते हैं ? ये कितनी हैं, उनके नाम बताओ ?
- (२) भावनाओं का चिंतन कौन करते हैं ? इनके चिंतन से क्या लाभ होता है ?

- (३) एकत्व और अ-एकत्व भावना में क्या भेद है ?
- (४) अशुचि भावना, निजरा भावना और धर्म भावना के छन्द सुनाओ ।
- (५) आत्मत्व और सत्त्व भावना का स्वरूप बताओ ।
- (६) इन भावनाओं के रचयिता कौन हैं ? ये भावनाएँ किस पुस्तक से ली गई हैं ?

### त्याग

प्रभु आदिनाथ को नर नारी ही नहीं, देवी देवता भी वन्दना करने आया करते थे । त्रिशूलों पिता के चरणों पर झुका हुआ देव प्रभु की दोनों कन्या ब्राह्मी और सुन्दरी आत्म सुख अनुभव करती थीं । अभी उम्र की वे छोटी थीं और पिता को ही सबसे सम्मर्नी थीं । सम्मर्नी क्यों नहीं भला इनसे भी महान् और मोई होगा, देवता तक जिनकी वन्दना करते हैं । समय तो रुकता नहीं आया और बीत गया कि एक दिन सरल स्वभाव पितासे पूछने लगीं 'पिताजी । आपसे भी अधिक पूज्य कोई हैं ? प्रभु थोड़ी देर मौन रहे, फिर बोले—“हां हैं” ।

पुत्रियों को पिता के उत्तर में आस्था लाने में यत्न लगा, उन्हें रह रह कर आज क्यों पिता के ये वाक्य गम्भीर लगने लगे, तो आगे प्रश्न किया—“पिताजी । ये कौन हो सकते हैं ? जो आपसे भी पूज्य हैं । या आप हमें छोटा अल्पव्यय सम्भ्र हमारी आत्म-तुष्टि नहीं करना चाहते” ?



प्रभु ने कहा—“जिनसे तुम्हारा विवाद होगा, वे हमारे पूज्य होंगे।” अब सराय का कोई स्थान नहीं। पुत्रियों को आदत नहीं कि पिता से भी अधिक किसी को पूज्य समझे। पर वे मानव हैं, उनमें आज अतद्धृद मचा है। एक ओर पिता का जगन् पूज्यत्व और एक ओर समस्त जीवन का सुख वैभव।

ब्राह्मी ने सुन्दरी और सुन्दरी ने ब्राह्मी की ओर देखा—देखा जैसे दोनों की आँसों ने कहा—“उहाँ के द्वारा पिता का विश्व घटत्व नष्ट होता ?’ वे अपने और दूसरे के हृदय की बाह लेने लगीं।

उसी पल उन्होंने निश्चय किया और प्रभु के चरणों में नत होकर बोलीं—“पर पिताजी, हमतो दीक्षा लेने जा रही हैं और वे आयिका होगई। प्रभु कथाओं के त्याग पर मुहुरा दिये।

( अक्षयकुमार B A दि० जैन धर्म कथाङ्क )

### प्रश्नावलि

- (१) ब्राह्मी और सुन्दरी ने अपने पिताजी श्री ऋषभदेव भगवान् से क्या पूछा ? और भगवान् ने उनको क्या उत्तर दिया ?
- (२) अतद्धृद का क्या अर्थ है ?
- (३) पिताजी का उत्तर सुनकर ब्राह्मी और सुन्दरी ने क्या निश्चय किया और क्या किया ?

## सम्यक् चारित्र

अपने ही शुद्ध आत्म भागों में रमण करने का नाम निरचय चारित्र है और इस अवस्था को प्राप्त होने का जो कारण है वह व्यवहार चारित्र है। यदि कोई केवल व्यवहार चारित्र को ही पाने और उसके द्वारा निरचय सम्यक् चारित्र को प्राप्त न कर सके तो वह व्यवहार चारित्र यथार्थ नहीं कहलायेगा, जैसे कोई व्यापारी व्यापार वाणिज्य तो बहुत कर और धन का लाभ नहीं कर सके तो उसके व्यापार को यथाथ व्यापार नहीं कहा जायेगा।

यह व्यवहार सम्यक् चारित्र दो प्रकार का है। एक सकल चारित्र या साधु का चारित्र, दूसरा विकल या श्रावक का चारित्र।

### सकल चारित्र

ससारी प्राणी क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारों कषायों के बशीभूत होकर रागी द्वेषी हुना - अपने स्वार्थ साधन के लिये पाच प्रकार के पाप, हिंसा, झूठ बोरी, कुशील और परिमह को किया करता है। इन ही पाचों पापों का पूर्ण रूप से त्याग करना, साधु का चारित्र है। इन ही के पूर्य त्याग को महाव्रत कहते हैं इन ही की दृढता के लिये पच समिति तथा तीन गुप्ति का पालन किया जाता है। इसीलिये पच महाव्रत, पच समिति और तीन गुप्ति इनको मिला कर तेरह प्रकार का चारित्र मुनि का कहा गया है। इनमें पच महाव्रत मुख्य हैं। यद्यपि महाव्रत पाच बताये गये हैं, परन्तु एक अहिंसा महाव्रत में बाकी चार सत्य महाव्रत,

१०४ सभ्यता का आचरण करने से ही मनुष्य सभ्य समझा जाता है

अर्चीर्य महाव्रत, ब्रह्मचर्य महाव्रत और परिग्रह त्याग महाव्रत गभित है। मूठ बोलने से, चोरी करने से, गुरील भाव से तथा परिग्रह की वृष्णा से आत्मा के गुणों का घात हाता है, इसलिये वे सब हिंसा क ही भेद हैं। जहा हिंसा का समथा पूर्ण त्याग है, वहा मूठ, चोरी, गुरील और परिग्रह इन चारों पापों का भी त्याग हो जाता है।

### (१) अहिंसा महाव्रत

कपायसे अपन बापर जीवके भाव प्राण या द्रव्य प्राणको पीडा न देना अहिंसा व्रत है, राग द्वेष, मोह मान माया लोभादि कपायों से या प्रमाद भाव से आत्मा के शुद्ध शांत भाव का घात होता है उन भावों के हाने को भाव हिंसा कहते हैं। अपने तथा दूसरों के द्रव्य प्राणों के घात हान का नाम द्रव्य हिंसा है। मुनिराज छद कायके जीवोंका घात नहीं करते, उनकी रक्षा करते हैं इसलिये उनक द्रव्य हिंसा का त्याग होता है, राग द्वेष, मोह आदि विकार भावों को उहोंने नष्ट कर दिया है इसलिये उनके भाव हिंसा भी नहीं होती। मन, वचन, काय से सकल्पी तथा आरम्भी हिंसा क समथा त्यागी होते हैं। मुनिराज भावना किया करते हैं कि वे अपने वचन को बश म रखें, कभी कोई ऐसा वचन मुक्त से न निरुलने पावे जिससे अपने को या अन्य प्राणियों को पीडा पहुँचे। कभी कोई हिंसा रूप विचार मन में न आने पावे। इस घात का विचार करते रहते हैं कि गमन करते समय किसी जीव की हिंसा न होवे,

दिना वस्तु के लगाने या रखने समय किसी चीज की हिंसा न हो पावे, भोजन पार आदिक भन्ने प्रकार दंग शोध कर किया जाये । जिसमे किसी चीज की हिंसा न होवे ।

### (२) सत्य महाव्रत

मा, वचन, काय से सयथा असत्य का त्याग करना—महाव्रती माणु सदा त्रि भिन निष्ठ वचन शाश्वक ही बोलते हैं, वे कभी अप्रिः कटुक, कटार पार रूप, निरा गाली गलौच के शब्द तथा हिंसा के बढाने वाले वचन नहीं कहते । मुनिराज इस बात का विचार रखते हैं कि श्राध न खाने पावे, लोभ न उपने, भय कल्पन न हो क्यों कि इन तीनों अवस्थाओं में असत्य वचन मुख से निकल जाना है । मुनिराज यह ध्यात रखत हैं कि हास्य रूप वचन अथवा हसी मनाक के वचन मुख से न निकलने पावे, क्यों कि हसी मनाक में असत्य वचन बोला जाना है, वे सदा ही भागन क अनुसार पार रहित वचन बोलने का विचार किया करते हैं ।

### (३) अचीर्य महाव्रत

मा, वचन, काय से सयथा चोरी का त्याग करना—मुनिराज विना न्ये हुवे किसी की थोटे भी वस्तु प्रदण नहीं करते । जल, मिट्टी तथा पत्थन की वस्ती भी बिना ही हुद नहीं लेते हैं । अचीर्य महाव्रत का पालन करते हुए मुनिराज इस बात का ध्यान रखने हे कि वे जैसे घर का धान पर न रहें, जहा थोडे अवसाध बगैर हो ।

शून्य पर होना चाहिये जिससे किसी वस्तु के ग्रहण करने की प्रेरणा न हो। ऐसे स्थान में रहना जो छोटा हुआ हो जिससे किसी के ग्रहण किये हुये स्थान के ग्रहण करने का दोष न आवे। जो कोई और प्राणी उस स्थान में ठहरे जहाँ अपना वास हो तो उसको ठहरने से नहीं रोकना क्योंकि रोकने से उस स्थान को अपनी मिलकीयत बनाने का दोष आता है। मुनिराज इस बात का भी विचार रखते हैं कि भिक्षा की विधि में कोई बात कम या ज्यादा न होने पावे क्योंकि इससे भी पर वस्तु के ग्रहण करने का दोष लगता है। इस बात का भी विचार रहता है कि धर्मात्माओं ने किसी प्रकार का भी कोई झगड़ा न होवे।

### (४) ब्रह्मचर्य महाव्रत—

मन, वचन काय से सर्वथा मैथुन का त्याग करना। मुनिराज अठारह हज्जार शील के भेदों का पालन कर रही मात्र के त्यागी होते हैं और निरंतर अपने आत्मा का अनुभव निश्चय करते हैं। इस महाव्रत को हृदय के साथ पालन करने के लिये मुनिराज उन सब बातों से अपने आपको बचाते हैं, जिनसे काम भाव उत्पन्न हो—स्त्रियों के राग भाव उत्पन्न करने वाली कथाओं का त्याग करते हैं, स्त्रियों के सुन्दर २ मनोहर अङ्गों के देखने का त्याग करते हैं, पहले भोगे हुये विषय भोगों को याद नहीं करते; कामोद्दीपन करने वाली वस्तुओं के स्पर्श का त्याग

प्रातः काल उठ कर सारे दिन की कार्यावली बना लेनी चाहिये १

करते हैं और अपने शरीर को शुद्धरूप करने का त्याग करते हैं। इत्यादि सब कारणों से पचने का सदैव विचार करते रहते हैं।

### ५ परिग्रह त्याग महाव्रत

चौबीस प्रकार के परिग्रह का मन, वचन, काय से सर्व त्याग करना। चौदह प्रकार का अतरंग परिग्रह विभाजित है जैसे मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरि, शोक भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुम्पवेद और नपुंसकवेद।

### दश प्रकार बहिरंग परिग्रह

खादी, सोना, क्षेत्र, मकान, धन धान्य, दासी दास, कपड़े और धर्म

मुनिराज पाचों इन्द्रियों के किसी भी इष्ट अनिष्ट विषय में रागद्वेष रूप नहीं प्रवर्तते।

### पाच समिति

प्रमाद रहित होकर सावधानता पूर्वक घटने का न समिति है। मुनिराज नीचे लिखी पाच समितियों का पाच महाव्रतों की रक्षा तथा दृढ़ता के लिये क्रिया करते हैं।

### ( अ ) ईर्ष्या समिति

पृथ्वी को चार हाथ प्रमाण आगे दृग्गकर चलना। जिस में ही चलना, रात्रि को नहीं चलना, ऐसे मार्ग में चलना मनुष्य और पशुओं के आने जाने से रौंदा हुआ हो धीरे आगे को देखते स्वे चलना। चलते हुये इधर उधर

देखना अर्थात् ऐसी सावधानता से चलना जिससे किसी जीव की भी हिसा न होवे।

### ( आ ) भाषा समिति

हितकारी, प्रमाणीक सन्देह रहित, मिष्ट वचन बोलना। मुनिराज के मुखारविंद से ससार का उपकार करने वाले, सब तरह की बुराइयों का नाश करने वाले कानों का मुखकारी, सब प्रकार का मद्दह दूर करने वाले और मिथ्यात्व रूपी रोग को नाश करने वाले अमृत समान वचन ही निकला करते हैं।

### ( इ ) एषया समिति

दिन में एक बार निर्दोष आहार भिन्ना रक्ति से लेते हैं। मुनिराज त्रियालीस दोष, बत्तीम अनराय को टानकर कुलीन श्रावक के घर केवल तप वृद्धि व अभिप्राय से आहार करते हैं, शरीर को पुष्ट करने का उनका उद्देश्य नहीं होता है।

### ( ई ) आदान निवेपण समिति

शास्त्र, कमण्डल, पीछी आदिक धर्म के उपकरणों को जो मुनि के पास होते हैं, उनको नेत्रों से देखकर पीछी ले शोध कर इस प्रकार घटना कि किसी जीव को बाधा न हो।

### ( उ ) व्युत्तमर्ग समिति

जीव जंतु रहित प्रासुक भूमि पर शरीर के मल मूत्र आदि इस प्रकार सावधानी के साथ ढालना जिसमें किसी

चीज को बाधा न हो। समिति मुनिग्रन्थ का मूल है, मुनिराज अपने चारित्र की शुद्धि के हेतु इनका पालन करते हैं।

### गुप्ति—

भले प्रकार मन, वचन, काय की यथेच्छा प्रवृत्ति के रोकने का नाम गुप्ति है। गुप्ति तीन है—

#### ( क ) मनोगुप्ति

रथाति, लाभ, मान की वाछा के बिना मनोयोग को रोकना।

#### ( ख ) वचनगुप्ति

रथाति, लाभ, मान की वाछा के बिना वचन योग को रोकना।

#### ( ग ) कायगुप्ति

रथाति लाभ, मान की वाछा के बिना काय योग को रोकना।

गुप्ति ही मुनि पद का मूल है, गुप्ति बिना सम्यक् चारित्र नहीं होता और सम्यक् चारित्र बिना मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। इस तैरह प्रकार क चारित्र का पालन मुनिराज किया करते हैं—इसके अतिरिक्त मुनिराज पाचों इन्द्रियों का जीनते हैं। पाचों इन्द्रियों क विषयों म रागद्वेष नहीं करना पच इन्द्रिय विनय है।

मुनिराज छह आवश्यक का निय प्रति पालन किया करते हैं। सामायिक करते हैं, अहंत्त भगवान् की स्तुति करते हैं, जिनेन्द्र प्रभु की वदना करते हैं, स्याध्याय करते हैं प्रतिग्रमण अर्थात् लगे हुवे दोषों को दूर करने के लिये पश्चात्ताप करते हैं, कायो



संग करने हैं अर्थात् शरीर से ममत्व त्यागते हैं और गड़े होकर ध्यान लगाने हैं ।

मुनिराज ने सात धर्मों या विशेष गुण यह और होने हैं—  
वे स्नान नहीं करते, दातवन नहीं करते, नग्न रहते हैं, जमीन पर रात्रि के पिठल पहर म एक ही करपट अल्प निद्रा लते हैं, दिन म एक बार थोड़ा सा आहार लते हैं, यह भी गड़े होकर और अपने हाथ का ही पात्र बना कर, अपने हाथ से ही अपने बालों का लोंच करते हैं और जो चुधादि परीपहों से न डर कर अपने आत्म ध्यान म लीन रहते हैं । इस प्रकार पंच महाव्रत, पंचसमिति पंच इन्द्रिय विजय, छह आवश्यक, स्नान नहीं करना, दात नहीं धोना, नग्न रहना, जमीन पर सोना, एक बार दिन में भोजन करना, हाथों का ही पात्र बना कर उसमें गड़े २ आहार लेना, अपने हाथ से अपने बालों का लोंच करना, यह मुनिराज मिला पर साधुओं के २५ मूल गुण बात हैं जो साधुओं में होने ही चाहियें, जैसे मूल के बिना घड़ टिक नहीं सकता वैसे ही इन गुणों के बिना साधु हो नहीं सकता, इसीलिये इनको साधुओं का २५ मूल गुण कहा गया है ।

मुनिराज वीतरागी निरुही होते हैं उनके लिये शत्रु मित्र, महल मसान, सोना और काच निन्द्य और स्तुति, पूजन करना या नलनार से प्रहार करना ये सब समान हैं । वे परम समता भाव के धारक होते हैं, हर अनरग्य में सदा शान्त चित्त रहते हैं ।  
मुनिराज अनशन, उन्नेष्ट, धन परिसंन्याय, रस परित्याग

विविक्त शय्यासन और काय हँस इन छह बहिरङ्ग के तप को तथा प्रायश्चित्त, विनय, वैश्या वत्य स्वाध्याय, कायोत्सग और ध्यान इन छहों अंतरङ्ग के तप को कुल मिला कर बारह प्रकार के तप को साधन करते हैं। उत्तम क्षमा उत्तम माद्वष, उत्तम आर्जय, उत्तम सत्य उत्तम शौच, उत्तम सयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आर्कित्य तथा उत्तम ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। वे सदा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र्य रूप रत्नत्रय धर्म का पालन करते हैं। वे कभी दृमरे मुनिर के साथ या कभी अकेले विहार करते हैं और रज्ज मात्र म भी ससार के विनाशीक सुख की इच्छा नहीं करते।

यह मुनि का सकल चारित्र्य वर्णन किया। अब जरा निश्चय चारित्र्य या आत्म चारित्र्य पर भी विचार कीजिये। निश्चय चारित्र्य से अपने आत्मा की क्षानादि सम्बन्धि प्रगट होती है और पर ज्ञान में सब प्रकार की प्रवृत्ति मिट जाती है। जब मुनिरान स्वरूपाचरण के समय भेद ज्ञान रूपी बहुत तेष छैनी से अपने अंतरङ्ग का परत्न ताड कर और शरीर के वर्ण आदि बीस गुणों और राग, द्वेष क्रोध, मान आदि भागों से अपने आत्मीक भाव को जुदा कर अपने आत्मा में अपने आत्म हित के लिये अपने आत्मा के द्वारा अपने आत्मा को आप ही प्रकट करते हैं तब गुण गुणी, ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय में कुछ भी भेद नहीं रहता अर्थात् एक ऐसी ध्यानमय अवस्था हो जाती है जिसमें वे सब एक हो जाते हैं, सब विकल्प मिट जाते हैं। उस ध्यान की अज्ञाता में;

१ ध्यान का न ध्याता का और न ध्येय का काष्ठ भेद है और न वचन से रहन योग्य ही नमं भेद है, उसमें तो चेतना भाव ही कर्म, चेतन ही कृता और चेतना ही क्रिया है, यद्वा कर्ता, कर्म क्रिया भाव किन्तुल जडा नहीं है और न एक दूसरे से टूटने योग्य ही है। यद्वा तो शुद्ध भाव की निर अत्रथा है, जिसमें दर्शन, ज्ञान चारित्र भी एक रूप होकर प्रकाशमान हो रहे हैं। उस ध्यान जनता में प्रमाण, नय निर्वेष स प्रकाश अनुभव में नहीं आता, किन्तु उसमें आत्मा विचार करता है कि मैं दर्शन ज्ञान, सुख तीर्थरूप हूँ, मुझमें कोई दूसरा भाव नहीं है। मैं ही साध्य हूँ और मैं ही साधक हूँ तथा कम और उनके फल में रहित भी मैं ही हूँ। मैं चैतन्य का बिण्डु अर्थात् समुद्र हूँ और मैं ही प्रचण्ड त्पण्ड रहित उत्तम गुणों का पिठारा हूँ तथा सब पापों से रहित हूँ।

इस प्रकार विचार करते करते मुनिराज जब आत्म ध्यान में लीन हो जात हैं तो यह जा अस्थनीय आनन्द उस समय प्राप्त होता है, यह आनन्द १ इन्द्र का मिलता है, न अहमिन्द्र को मिलता है, २ चन्द्रवर्ति और नागेन्द्र को प्राप्त होता है।

उस समय वे शुक्ल ध्यान रूपी अग्नि ३ द्वारा चार घातिया कम रूपी वन को भस्म कर करल ज्ञान को प्राप्त होते हैं, और उसके द्वारा तीनों काल की घातों को दाय में रखे हुये आबले की तरह जान कर भव्य पुण्यां को मोक्ष माग का उपदेश करते हैं, यह इतनी अदभुत अत्रथा रहताही है। उसके बाद वे स्वयं

नाम, गोत्र और वेदनी इन चारों अधोलिया कर्मों को भी क्षण भर में क्षय करके मोक्ष को चले जाने दें, कर्मों का नाश होने पर उनके सम्यक् आदि आठ गुण प्रगट हो जाते हैं। मोह के नाश से सम्यक्, ज्ञानावरणी के नाश से ज्ञान, दर्शनावरणी के नाश से दर्शन, अंतराय के नाश से वीर्य, आयु के नाश से अयगाहना, नाम कम के नाश से सूक्ष्मत्व, गोत्र कम के नाश से अगुरु लघु और वेदनी के नाश से अव्याघात। वे ससार रूपी समुद्र से तिर कर और उसके पार पहुँच कर, विकार, शरीर और मूर्ति रहित हो शुद्ध चैतन्यमय अविनाशी सिद्ध परमात्मा हो जाते हैं। सिद्ध भगवान की आत्मा में तीनों लोक और अलोक अपने २ गुण और पचास सहित ऐसे मलकते हैं जैसे दर्पण में पदार्थ मलकते हैं। मोक्ष में जैसे और सिद्ध हैं वैसे ही ये भी अनन्तकाल तक रहेंगे, वे जीव धन्य हैं जिन्होंने मनुष्य जन्म पाकर ऐसा काम किया। तेम ही महान् आत्माओं ने अनादिकाल से चले आये पथ परावर्तन रूप मसार को त्याग कर उत्तम अत्रिकार अतीन्द्रिय अविनाशी मोक्ष सुख को प्राप्त किया है। इस आनन्दमय सिद्ध अवस्था के पाने का कारण निश्चय और व्यवहार ऐसे दो दो भेद रूप सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य हैं। भव्य जीवों को आलस्य छोड़कर इन्हें प्रहण करना चाहिये। तिन विषय कृपायों का हमेशा से सेवन किया इनमे मन को हटा कर मोक्ष सुख पाने का उद्यम मनुष्य भय के सिवा और दूसरे भय में नहीं हो सकता। मनुष्य

मय का पाना बड़ा ही कठिन है एक बार ऐसा समय बधा खो देन से फिर इसका मिलना बहुत ही दुर्लभ है इसलिये अब जो अमोलक अवसर प्राप्त हुआ है, उसे यूँ ही न गंवाकर अपने आत्म कल्याण के मार्ग पर आरुढ़ होना चाहिये ।

### प्रश्नोत्तर

- (१) सम्यक् चारित्र्य किसे कहते हैं ?
- (२) निश्चय और व्यवहारचारित्र्य में क्या अन्तर है ?
- (३) व्यवहार चारित्र्य के कितने भेद हैं ? उनके नाम बताओ ?
- (४) सकल चारित्र्य से तुम क्या समझते हो ? इस चारित्र्य का पालन कौन करते हैं ।
- (५) महाधन किसे कहते हैं ? महाधन कितने होते हैं उनके नाम बताओ ।
- (६) समिति से आप क्या समझते हैं ? समिति कितने प्रकार की होती है ?
- (७) ईया समिति, आदान निवप और प्रतिष्ठापन समिति से आप क्या समझते हैं ?
- (८) भाषा समिति और एषणा समिति का स्वरूप अपने शब्दों में समझाओ ।
- (९) गुप्ति किस कहते हैं ? गुप्ति कितनी होता है ? उनके नाम बताओ और प्रत्येक का स्वरूप समझाओ ।
- (१०) मुनिराज के षट् आवश्यकों के नाम बताओ ।
- (११) साधुओं के दस मूल गुण बताओ ।

- ( १० ) बारह प्रकार के तप का नाम बताओ ।
- ( १३ ) निश्चय चारित्र का कुछ स्वरूप अपनी सरल भाषा में समझाओ ।
- ( १४ ) क्या व्यवहार चारित्र निश्चय चारित्र के बिना कार्यकारी है ?
- ( १५ ) क्या निश्चय चारित्र व्यवहार चारित्र के बिना कार्यकारी है ?
- ( १६ ) पंच इन्द्रिय विजय से क्या समझने हो ?
- ( १७ ) दशलक्षण धर्म के नाम बताओ और उनका संक्षेप स्वरूप भी बताओ ।
- ( १८ ) रत्नत्रय किसे कहते हैं ?
- ( १९ ) तेरह प्रकार का चारित्र क्या है ?
- ( २० ) सिद्ध अवस्था का कुछ वर्णन संक्षेप से अपने शब्दों में करो ?

### विकल चारित्र या श्रावकधर्म

पहले बता चुके हैं कि व्यवहार सम्बन्ध चारित्र दो प्रकार का होता है—सकल चारित्र और विकल चारित्र, सकल चारित्र का वर्णन पढ़ चुके हो अब विकल चारित्र का कुछ संक्षेप से वर्णन करते हैं । विकल चारित्र का वर्णन तुम पहले भी धर्म शिक्षावलि चतुर्थ भाग में पढ़ चुके हो ।

जिन पचन भद्रानी, पापमार्ग, पाप में डरने वाले शानी विवेकी गृह कुटुम्ब, धनादिक सहित गृहस्थियों के विकल चारित्र होता है—गृहस्थियों का चारित्र पंच अणुग्रन्थ, तीन

चार शिजाग्रत रूप तीन प्रकार का होता है । पच अणुत्रय इस प्रकार है —

(१) अहिंसा अणुत्रय—स्थायर जीवों की हिंसा का त्यागी न होकर घस जीवों की मकन्यी हिंसा का त्याग करना अहिंसा अणुत्रय कहलाता है । इस अणुत्रय के पालने वाला स्थावर जीवों की भी व्यवर्थ हिंसा नहीं करता, यत्नाघार पूवक व्यवहार करता है ।

इस अणुत्रय का पालन करने वाला मनुष्य पशु आदि जीवों के नाक कान, पृष्ठ, होठ आदि अंगोपांग को नहीं छेदता, जीवों को बंधनों से जकड़ता नहीं, बन्दीमह म रोकता नहीं, पक्षियों को पीजरे आदि में रोक कर रगता नहीं । जीवों को तात, मुका, लाठी, चाबक, कीड़ा आदि से मारता नहीं । पशुओं पर तथा मनुष्यों पर, गाडा गाडी पर उनकी शक्ति से अधिक बोझ लादता नहीं, अपने आधीन मनुष्यों पशुओं तथा अन्य जीवों को खाना पीना न कर भूखा प्यासा नहीं भागता ।

(२) सत्याणुत्रय —स्थूल मूत्र बालने का त्याग करना सत्याणुत्रय कहलाता है । इस अणुत्रय का धारण करने वाला न तो आप माटा मठ धोलता है न दूसरों से धुलवाता है और ऐसा सच भी नहीं धोलता कि जिसने धोलने से दूसरों पर आपत्ति आ जावे या अपवाद फैल जावे ।

इस अणुत्रय का धारक मिठ्या उपदेश नहीं देता, दूसरों के दोष प्रगट नहीं करता विश्वासघात नहीं करता, झूठी गवाही नहीं

देता; झूठे जाली कागज, तमसुक, रसीद वगैरह नहीं बनाना, झूठे जाली मोहर और हस्ताक्षर वगैरह नहीं करता ।

(३) अचौर्याणुव्रत. — प्रमाद के वश होकर दूसरों की बिना दी हुई वस्तुको ग्रहण करने का त्याग करना अचौर्याणुव्रत है ।

इस व्रत का पालन करने वाला दूसरों को चोरी करने के उपाय नहीं बताता, चोरी का माल नहीं लेता, राजा के महसूल आदि की चोरी नहीं करता, अथवा राज्य आशा के विरुद्ध काय नहीं करता, लेन देन के बाट तराजू, गज आदि को कम ज्यादा नहीं रखता । लेने के बाट और, देने के बाट और नहीं रखता, ज्यादा कीमत वाली चीज में घटिया चीज मिला कर बढिया वस्तुमें नहीं चलाता जैसे दूध में पानी मिलाकर असली के तौर पर बेचना ।

(४) ब्रह्मचर्याणुव्रत — अपनी विवाहिता स्त्री के सिवाय अन्य सब स्त्रियों से काम सेवन का त्याग करना ब्रह्मचर्याणुव्रत है । इस व्रत का धारी अपने या अपने आधीन पुत्र पुत्रियों को छोड़ दूसरों के पुत्र पुत्रियों का विवाह नहीं करता करता, काम सेवन के अगों को छोड़ कर अन्य अगों द्वारा काम भीड़ा नहीं करता । मन, ध्यान, काय की प्रवृत्ति को नीच नहीं करता, भंड चेष्टायें नहीं करता, पुरुष होकर स्त्री का वेष नहीं बनाता, स्वाग आदि नहीं रखता, और न ही स्त्रियों जैसी चेष्टायें करता काम की सेवन तीव्र अभिलाषा नहीं रखता, व्यभिचारिणी स्त्रियों के घर आता जाता नहीं, न उनको अपने घर बुलाना है उनके



चार शिक्षाधन रूप तीन प्रकार का होता है । पत्र अगुप्तन इस प्रकार हैं —

(१) अहिंसा अगुप्तन—स्थायर जीवों की हिंसा का त्याग न होकर धर्म जीवों की सख्खी हिंसा का त्याग करना अहिंसा गुप्तन कहलाता है । इस अगुप्तन के पालने वाला स्थायर जीवों की भी व्यर्थ हिंसा नहीं करता, यत्नाचार पूर्वक व्यवहार करता है ।

इस धर्म का पालन करने वाला मनुष्य पशु आदि जीवों के नाक, कान, पृष्ठ दोठ आदि अंगोपांग को नहीं छुदता, जीवों को बंधनो से लकड़ता नहीं, बदीपह म रोकता नहीं, पक्षियों को पीजरे आदि मे रोक कर रगता नहीं । जीवों को क्षात, मुषा, लाठी, चामुक, शोडा आदि से मागता नहीं । पशुओं पर तथा मनुष्यों पर, गाडा गाडी पर उनकी शक्ति से अधिक योम्ता लागता नहीं, अपने आधीन मनुष्यों पशुओं तथा अन्य जीवों को खाना पीना न दकर भृग्य ध्यासा नहीं मारता ।

(२) सत्यागुप्तन —स्थूल मूठ बोलन का त्याग करना सत्यागुप्तन कहलाता है । इस धर्म का धारण करने वाला न तो आप माटा मठ बालता है न दूसरी से बलमाना है और ऐसा सच भा नहीं बोलता कि जिसक बोलने से दूसरी पर आपत्ति आ जाये वा अपवाद फैल जाय ।

इस धर्म का धारण मिथ्या उपदेश नहीं दवा, दूसरी के दोष प्रगट नहीं करता विश्वासघात नहीं करता, झूठी गवाही नहीं

देता, झूठे जाली काराज, तमसुक रसीद वगैरह नहीं बनाता, झूठे जाली मोहर और हस्ताक्षर वगैरह नहीं करता ।

(३) अचौर्याणुव्रत — प्रमाद के वश होकर दूसरों की बिना ही हुई वस्तुको ग्रहण करने का त्याग करना अचौर्याणुव्रत है ।

इस व्रत का पालन करने वाला दूसरों को चोरी करने के उपाय नहीं बताता, चोरी का माल नहीं लेता, राजा के महसूल आदि की चोरी नहीं करता, अथवा राज्य आज्ञा के विरुद्ध कार्य नहीं करता, लेन देन के बाट तराजू, गज आदि को कम ज्यादा नहीं रखता । लेने के बाट और, देने के बाट और नहीं रखता, ज्यादा कीमत वाली चीज में घटिया चीज मिला कर बढ़िया वस्तुमें नहीं चलाता जैसे दूध में पानी मिलाकर असली के तौर पर बेचना ।

(४) ब्रह्मचर्याणुव्रत — अपनी विवाहिता स्त्री के सिवाय अन्य सब स्त्रियों से काम सेवन का त्याग करना ब्रह्मचर्याणुव्रत है । इस व्रत का धारी अपने या अपने आधीन पुत्र पुत्रियों को छोड़ दूसरों के पुत्र पुत्रियों का विशाद नहीं करता कराता, काम सेवन के अंगों को छोड़ कर अथ अंगों द्वारा काम ब्रीडा नहीं करता । मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को नीच नहीं करता, भड चेष्टायें नहीं करता, पुरुष होकर स्त्री का वैप नहीं बनाता त्याग आदि नहीं रचता, और न ही स्त्रियों जैसी चेष्टायें करता काम की सेवन तीव्र अभिलाषा नहीं रखता, व्यभिचारिणी स्त्रियों के पर आटा जाता नहीं, न उनको अपने घर बुलाता है उनके

साथ कोई व्यवहार नहीं करता, उनसे रूप शृङ्गार को नहीं देखता

(५) परिग्रह परिमाण अणुव्रत — जितने से अपने परिणामों में सतोप आजावे इतना परिग्रह का परिमाण करके उससे ज्यादा की इच्छा नहीं करना, परिग्रह परिमाण अणुव्रत है, इस व्रत का धारक आवश्यकता से अधिक सवारी नहीं रखता; जितने रखता है उनसे भी जरूरत से ज्यादा काम नहीं लेता, आवश्यकता से ज्यादा व्यर्थ ही सामान तथा चीजों को सम्ह नहीं करता; दूसरों की अधिक सपदा या विभूति को देखकर तथा जिन वस्तुओं को कभी देखा या सुना न हो उनको दृग्गकर या सुनकर आरचय नहीं करता; अति लोभी नहीं होता है सतोपमय जीवन व्यतीत करता है, अपने आधीन पशुओं तथा मनुष्यों से उनकी शक्ति से अधिक भार नहीं लेता न उनसे उनकी सामर्थ्य से चाहर काम लेता।

गुणव्रत — इन ऊपर लिये पाचों अणुव्रतों को धारण करने के पीछे उन व्रतों में यत्नेतरी करने के लिये तीन गुण व्रतों को धारण किया जाता है वे तीन गुणव्रत ये हैं —

### ( अ ) दिग्गति —

लोभ आरम्भ को कम करने के लिये जीवन भरके लिये दशों दिशाओं में आने जाने की हद बाध लेना दिग्गति है।

इस व्रत के धारीने जितनी उचाई तक जानेका प्रमाण किया है उससे ज्यादा उचाई पर नहीं चढ़ेगा, टेढ़ा जा कर

मर्यादा से बाहर नहीं जायेगा जिनके क्षेत्र का परिमाण किया हुआ है उससे ज्यादा नहीं बढ़ायेगा, निशाओं की गयी हुई मर्यादा को भूलेगा नहीं।

(अ) देश व्रत — घड़ी, घटा, दिन, पक्ष, महीना वगैरह नियत समय तक दिग्गमन में की हुई मर्यादा को और भी घटा लेना देश व्रत है।

इस व्रत का पालन करने वाला मर्यादा से बाहर के क्षेत्र में न जाए जाता है और न किसी को भेजता है, न मर्यादा से बाहर के क्षेत्र से कोई चीज मंगवाता है, मर्यादा से बाहर वाले क्षेत्र में रहने वाले को ग्लासी से, खटार के, फोई और आवाज से तार टेलीफोन चिट्ठी आदि द्वारा अपना अभिप्राय नहीं समझाता मर्यादा से बाहर के क्षेत्र में हाथ पाय मुँह आदि से किसी प्रकार का इशारा कर के काम नहीं कराता कक, पत्थर आदि फेंक कर मर्यादा से बाहर के क्षेत्र में अपना इशारा नहीं पहुँचाता।

(इ) धर्म्य दंड विधि — ऐसे पाप कार्यों का त्याग करना जिससे अपना कोई प्रयोजन सिद्ध न होता है, ऐसे व्यर्थ पाप पाप प्रकार के हैं। पापोपदेशा हिंसादान, अपभ्रान, लुभ्रति और प्रमान्चर्या।

व्यर्थ हिंसा के कार्यों का उपदेश देना पापोपदेश है। हिंसा के औजार फावड़ा, कुदाल, पीचरा, जजीर, आदि हिंसादान है। प्रकार की चीजें अपने लिये

जरूरी हों तो रखे दूसरों की दान करना तो व्यर्थ का ही है। बैठे बिठाये दूसरों की चूगली करना, दुराई करना, दूसरों का घुरा घाहना इत्यादि सब अपमान हैं। इमसे अपना तो कुछ दिव होता नहीं, पाप बंध तो ही जाता है। राग, द्वेष, काम क्रोधादि को उत्पन्न करने वाली पुस्तकें, नावल किरसे कदापि पढ़ना सुनना दुःश्रुति है। विना प्रयोजन जल खिंटाना जमीन छुरेदना फल तोड़ना, अग्नि जलना इत्यादि क्रिया करना जिसमें हिंसा होती हो तथा विना सावधानी के व्यर्थ इस प्रकार प्रवर्तना की जिमसे जीवहिंसा हो प्रमाद चर्या है। अनर्थ दंड त्याग व्रत का पालन करने वाला ऐसे कोई व्यय के कार्य कदापि नहीं करता।

यह हसी मजाक के भड बचन नहीं बोलना शरीर से भड क्रिया तथा कुचेष्टा नहीं करता, व्यर्थ पकवास नहीं करता, विना विचारे व्यर्थ ही जरूरत से ब्यादह अपने मन, बचन, काय की प्रवृत्ति नहीं करता, इससे शक्ति और समय का व्यर्थ में नारा होता है विना प्रयोजन जरूरत से ब्यादह भोगोपभोग की सामग्री समझ नहीं करता।

शिदाप्रत—गुणप्रतों को बढ़ाने चार शिदा प्रत महण करने चाहियें, इन से चारिप्र म अधिकवृद्धि होती है। जिन प्रतों से मुनि धम की शिदा मिलती है अर्थात् अभ्यास होना है। उन को शिदा प्रत कहते हैं। ये शिदाप्रत चार हैं—सामायिक, प्रोपधोपवास, भोगोपभोग परिमाण प्रत और अतिथि सविभाग।

(क) सामायिक—समस्त पाप क्रियाओं से रहित होकर

सबसे रागद्वेष छोड़ साम्य भाव को प्राप्त होकर आत्म स्वरूप में लीन होना सामायिक है ।

इस वृत्त का पालन करने वाला मन को, वचन को तथा कायको इधर उधर अथवा चलायमान नहीं होने देता, उत्साह रहित यौ अनादर से सामायिक नहीं करता, सामायिक करते हुवे चित्त की चंचलता के कारण पाठज्ञाप आदि को भूल नहीं जाता ।

(ख) प्रोपधोपवास—प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी के

पहले दिन अर्थात् सप्तमी और त्रयोदशी के दो पहर से लेकर पारने के दिन अर्थात् नवमी और पंद्रस के दिन के दोपहर तक समस्त आरभ छोड़कर विषय कयाय तथा और सब प्रकार क आहार का त्याग करके सारे समय को घम सेवन में व्यतीत करना प्रोपधोपवास है ।

इस वृत्त का धारक बिना शोधी भूमि पर मल, मूत्र, कक आदि नहीं डालता, बिना देखे, बिना शोषे उपकरणों को चढाया या रखता नहीं, बिना दूखी बिना शोधी भूमि पर साधरा आदिक नहीं बिछाता घर्मे क्रिया को उत्साह रहित होकर नहीं करता हर्ष पूर्ण करता है आवश्यक क्रियाओं को सावधानता पूर्वक करता है उनको भूल नहीं जाता ।

(ग) भोगोपमोग परिमाणव्रत—भोगोपमोग की धातुओं की मर्यादा करके बाकी सब का त्याग कर देना । इस वृत्त का पालन करने वाला पाचों इंद्रियों के विषयों को अपने लिये

३ इनमें दिन प्रति दिन राग भाव को

जो भोग पढ़ने भोग चुका है उनको याद नही करता, जो भोग अब भाग रहा है उनमें आशङ्क होकर लपटता के साथ नही भोगता, आगामी काल में भोगों का भोजन के लिये अति कृपणा या लोलुपता नही रखता, यातव्य में विषयो को न भोगते हुये भी ऐसा विचार उसके दिल में नही आता कि मैं भोग रहा हूँ अर्थात् यथाज्ञ में भी भोगो को नही भोगता ।

इस श्रुत का धारक सपभी होना है, १७ नियमों को पालता है सप्त व्यसन का त्यागी होता है अभय भक्षण का त्याग करता है

( ५ ) अतिथि मन्त्रिभागवत — पत्न की इच्छा के बिना भक्ति और आदर भाव से धर्म युद्धिपूयक मुनि, स्वामी तथा अन्य भगवान्मा पुरुषों का आहार औपधि ज्ञान और अभय चार प्रकार का दान देना । जो साधु भिक्षा के लिये भ्रमण करते हैं और उनके ज्ञान के लिये कोई समय या तिथि नियत नही है, उन्हें अतिथि कहता है । अपने श्रुतम्ब के लिये बनाये हुये भोजन में से भाग करके दान मन्त्रिभाग है ।

इस दान का पालन करने वाला अतिथियों को दिये जाने योग्य आहार पत्न औपधि को हर पक्षों जैसे वसत्र पत्र आदि सचिप पदार्थों से नही दाता । हर पत्र आदि पर रखा हुआ भोजन जब औपधि आदि उनको दान में नही देता । दान को आदर भाव से दान दे अनादर या अविशय से नही दान । देने योग्य पदार्थ या दान की विधि को भूलना नही, किसी दूसरे दाता से ईप. करके दान नही दान ।

तीन गुण धर्मों और चार शिक्षाप्रदों को मिलाकर सप्त शील कहते हैं। ये पंच अणुधर्मों की रक्षा और वृद्धि करने वाले हैं।

भावक को इन ग्यारह धर्मों के अनिश्चित छह दैनिक कर्म भी नित्यप्रति करते रहना चाहिये। इन दैनिक पट् कर्मों को भावक के पट् आवश्यक कर्म भी कहते हैं—पट् कर्म के नाम हैं—देवपूजा, गुरु उपासना, राध्याय समय तप और दान।

सल्लोचना—भावक का यह भी धर्म है कि अन्त समय में जब मृत्यु का निश्चय होजावे तो धर्म ध्यान के साथ प्राणों का त्याग करे। इसको सन्यास मरण समाधि मरण या सल्लोचना कहते हैं। आहिंसा २ सप्त प्रकार की क्रियाओं और चिन्ताओं को छोड़कर तथा क्रमशः सप्त खाने पीने का त्याग कर आत्म ध्यान में लीन हो समता भाव पूर्वक प्राणों का त्याग करना ही श्रेष्ठ मरण है। इस सन्यासमरण या सल्लोचना को धारण करने वाला भावक सल्लोचना धारण करने के बाद अत्र आगे अधिक जीने की इच्छा नहीं करता रोग और कष्ट के भय से जल्दी मरने की इच्छा नहीं करता, अपने मित्रों में अनुराग नहीं रखता और न उनको याद करता है। पहले भोगे हुये भोगों का चिन्तन नहीं करता और नहीं आगामी भोगों के मिलने की वाछा ही करता है।

चारिग्र की अपेक्षा देशप्रती भावक के ११ दर्जे हैं जो ग्यारह प्रतिमाँ कहताती हैं। उन्नति करते हुये एक से दूसरी और दूसरी से तीसरी आदि ग्यारह प्रतिमा तक बढ़ना होता है और



उनसे भी ऊपर जाकर साधु होता है। आगे ० की प्रतिमाओं में पहले ० की प्रतिमाओं की क्रिया का होता भी बहरी है।

(१) दर्शन प्रतिमा —सम्बन्ध दर्शन में ०५ दोष नहीं लगाता, अष्ट मूल गुण का निरतिचार पालन करता है, सप्तव्यसन का त्यागी होता है। देव शास्त्र गुरु का दृढ़ धरानी होता है। अन्याय नहीं करता, दयालु होता है।

(२) व्रत प्रतिमा —भास्कर के पंच अंगुव्रत तथा ३ गुणव्रत और ४ शिवाव्रतों का तथा बुद्ध वारहव्रतों का निरतिचार पालन करता है।

(३) सामायिक प्रतिमा —व्रतों भास्कर सबेरे, दोपहर और शाम को नियत समय के लिये नियम पूर्वक सामायिक करता है।

(४) प्रोषण प्रतिमा —महीन के चारों पर्वों में अर्थात् प्रत्येक अष्टमी चतुर्दशी को १६ पहर का उपवास करना।

(५) सचिच त्याग प्रतिमा —इस प्रतिमा का चारों हरी वनस्पति अथवा फल फूल बीज आदिक नहीं खाता—प्रासुक आहार और जल को ग्रहण करता है।

(६) रात्रि भोजने त्याग प्रतिमा.— रात्रि के समय वृत्त, कारित, अनुमोदना रूप से सर्व प्रकार के आहार का त्याग करना।

(७) ब्रह्मचर्य प्रतिमा —अपनी पराई किसी भी प्रजा की स्त्री से भोग नहीं करना, अरुड निर्दोष ब्रह्मचर्य पालना।

(८) आरम्भत्याग प्रतिमा—गहस्थ सम्बन्धी सर्व प्रकार की क्रिया तथा आरम्भ का त्याग करना, सतोष धारण करना ।

(९) परिग्रह त्याग प्रतिमा—दस प्रकार के बाह्य परिग्रह से ममता को त्याग कर सतोष धारण करना ।

(१०) अनुमति त्याग प्रतिमा—किसी प्रकार के भी गह सम्बन्धी समस्त कार्यों में सलाह मशवरा नहीं देना । लाभ अलाभ, हानि वृद्धि, दुःख सुख आदि समस्त कार्यों में हय विपाद करके अनुमोदना नहीं करना । जो कोई भोजन को बुलावे उसके यथा भोजन कर आना—ऐसा नहीं कहना कि अमुक भोजन हमारे लिये बनाओ, जो कुछ शायक जिमावे सो जीम लेना ।

(११) उद्विष्ट त्याग प्रतिमा—गहस्थ से उदासता होकर घर छोड़ घन, मठ आदि में तपश्चरण करते हुवे रहना, निजा वस्त्र से भोजन करना और स्पष्ट वस्त्र धारण करना । वस्त्र द्विजा-धारी के दो भेद चुल्लक और ऐलक । चुल्लक—अपनी टांगी कटि के केश उस्तरे, कैंची आदि से कटवाते हैं लट्टे और नट धात्र रखते हैं, बैठकर अपने हाथ में या किसी बर्तन में भोजन करते हैं ऐलक जो चुल्लक से ऊंचे दर्जे के हाते हैं केवल लोच कटते हैं । केवल लगेटी रखते हैं । मुनि की गृहस्थ में लट्टे रहते हैं, और अपने हाथ में ही भोजन करते हैं किन्तु कटन से नहीं करते ।

जो भव्य जीव मुनि धम को चरुत करने के लिये

हैं, उन्हें चाहिये कि यथाशक्ति प्रहस्य धर्म का निर्दोष पालन करें ।  
और अपने जीवन को सफल बनायें ।

वास्तव में चारित्र ही धर्म है जो समता भाव है उसको ही धर्म कहा गया है राग द्वेष मोह रहित जो आत्मा का परिणाम है वही समभाव है और वही चारित्र है, जो सम्पर्क चारित्र की आराधना करते हैं वे धय हैं जो कि पापों को जीतते हैं, ध्यानारूढ होते हैं वही वीतराग चारित्र को पाकर परम पद को प्राप्त होते हैं । सम्बन्ध चारित्रवान की पूजा इन्द्रादि देव भी करते हैं जो चारित्र विहीन हैं, उनकी इस लोभ में निन्दा हुआ ही करती है, उनका परलोक भी कभी नहीं सुघरता । धय हैं वे महात्मा जिन्होंने रागद्वेष परिणामों को बिटार दिया है जो समस्त परिग्रह का त्याग कर ब्रतों में दृढ़ हो निमल चित्त से तपरचरण करते हैं, वे ही सच्चे धीर हैं वे ही वैराग्यवान् हैं, वे मोक्ष सुख की भावना रखते हैं सर्व परिग्रह से मुक्त हैं वे ही धय हैं ।

ऐसे चारित्र की महिमा को भली भाँति समझ धर्म का आचरण करना ही श्रेष्ठ है । धर्म का आचरण करो, मृतक समान मत बनो, जिन महानुभावों के चित्त में सच्चा धर्म बसा है, उनही का जीवन सफल है । जो धर्माचरण करने वाले हैं वे मरने पर भी अमर हैं और जो पाप के मार्ग में चलने वाले हैं वे जीते हुये भी मृतक समान हैं ।

### प्रश्नावली

- १—त्रिकल चारित्र्य किसे कहते हैं ?
- २—अणुव्रत किसे कहते हैं ? अणुव्रत कितने हैं ? उनके नाम बताओ और उनमें से प्रत्येक की व्याख्या अपने सरल शब्दों में करो ।
- ३—क्या एक अणुव्रती श्रावक नीचे लिखी बातें करेगा ?
  - (अ) ऊट या घोड़े पर शक्ति से अधिक बोझ लादना ।
  - (आ) दूसरों के दोष प्रगट करना ।
  - (इ) चुन्नी का महसूल नहीं देना ।
  - (ई) गणिका का नाच देखना ।
  - (उ) बहुत वस्तुओं का समूह करना ।
- ४—गुणव्रत किसे कहते हैं ? ये कितने हैं ? उनके नाम बताओ और प्रत्येक का स्वरूप भी समझाओ ।
- ५—इनको गुणव्रत क्यों कहते हैं ?
- ६—शिष्यान्व से क्या समझते हो य कितने हैं ? प्रत्येक का स्वरूप समझाओ ।
- ७—अनर्थ दृष्ट विरति और सामायिक व्रत का स्वरूप समझाओ
- ८--भोग और भोगोपभोग के पदार्थों से तुम क्या समझते हो ।
- ९—सल्लेखना से क्या समझते हो ? सल्लेखना व्रत कैसे पाला जाता है ।
- १०—प्रतिमा से क्या समझते हो, प्रतिमा कितनी होती है ?
- ११—शुलक और देलक किसे कहते हैं ?
- १२—सम्यक् चारित्र्य की महिमा ज्ञाने गणों में वर्णन करो

## पाठ

### व्यथ-जीवन

(१)

जो हैं न विद्यावान नर धर्मों नहीं दानी नहीं,  
सत्कर्म का कर्ता नहीं गुणवान भी शानी नहीं ।  
वह नर सदा ससार में बस । भूमि का ही भार है,  
नर रूप में प्रगटित हुआ मृग का विकट अवतार है ॥

(२)

शुभ भक्ति के रहते हुये उपकार नहीं जिसने किया  
होते हुये भी सम्पदा नहीं छान दीनों को दिया ।  
सुन आत्तवाणी बन्धु की जिसका नहीं पिघला हिया,  
सेवा न की यदि लोक की तो व्यर्थ वह जग में जिया ॥

(३)

मैं कौन हूँ ? गुण कौन मेरे और क्या अब प्राप्त है,  
किस कार्य दित मानव । हुआ मैं कौन सच्चा आस है ।  
हे विश्व सेवा वस्तु क्या जिमने विचार किया नहीं,  
हो के मनुज भी लोक मे वह हाय । हाय । जिया नहीं ॥

(४)

आहार या आराम ही जिसको सदा अति इष्ट है  
गौरव स्वयं ही हाय से परना अहो वह नष्ट है ।  
आये यदा जैसे अहो वैसे धरने वे जायेंगे,

अपकीर्ति की हो पोटरी निज शीश पर ले जायेंगे ॥

(५)

संसार में आवे तुम्हें सत्कर्म करना चाहिये,  
पर की व्यथा सप्रेम सादर शीघ्र हरना चाहिये ।  
यद्द शुभ अशुभ ही कर्म तो रहता सदा है साथ में,  
परलोक में जाता यही जाता न कुछ भी साथ में ॥

### प्रश्नावलि

- १—कैसा मनुष्य भूगि का भार समझा जाना है ?
- २—किस मनुष्य का जीवन संसार में व्यर्थ गिना जाता है ?
- ३—अपकीर्ति का पात्र कौन होता है ?
- ४—मनुष्य जन्म पाकर क्या करना चाहिये ।

### लव कुश

सावन का महीना था, चारों ओर प्रमोद बरस रहा था, स्त्रियों के मधुर गीत स्वर हृदय में सुदुःख गुदी पैदा कर रहे थे । सर्वत्र दिहोले के दरय बड़े ही कमनीय मालूम होते थे । बान बच्चों से लेकर बड़े बूढ़े सभी के अंतर में सावन अपना अनुराग राग बरसेर रहा था । ये सभी सावन की प्रणय कल्लोलों में लयलीन थे और थे अलमस्त ।

सीता के भी इसी समय नौ मास गर्भ के पूर्ण होगये । उनने इन्हीं प्रमोद भरे दिनों में अरुनी पुण्य मय कुत्ति से दो पुत्र प्रसव किये । पुर में और अधिक आनन्द मनाया जाने

लगा । स्थान २ पर रोशन चीकिया और शहनाइया बजने लगी । प्रजाजन कुमारों की जय कामना करने लगे, वे दोनों कुमार भाग्यशाली तथा अपुम तेज पूर्ण थे ।

धीरे धीरे समय निकलने लगा । सीता अपने युगल बालक की बाल लीला में अपने पति वियोग को भूल गई, वह अपना परित्याग भूल गई और भूल गई वह भयानक अरण्य । सारा परिवार इनकी बाललीला से प्रमुदित था । वे दोनों भाई होज के चन्द्रमा से दिनों दिन बढ़ने लगे । मामा यज्ञजघ ने इनके बढ़ने की व्यवस्था करदी । और फिर कुछ समय बाद वे दोनों भाई पढ़कर विद्वान् होगये ।

अब इन के यौवन के दिन थे । धीरे २ इनकी मुन कामनाये जाग रही थी । शरीर में नवीन स्पंदन होने लगा था और मन नवीन २ कल्पनाओं की सृष्टि में उलमने लगा था । एक दिन विचार होते ही मन व्रीडा के लिये मामा यज्ञजघ से आशा ले बन की ओर चल पडे ।

अरण्य की सुन्दरता में वे अपनी सुन्दरता से मधुर मधुर बरसेर रहे थे और उसके मोदय की कर रहे थे लूट । चारों ओर मधु मास का विश्वरा लावण्य इन्हें उत्साहित कर रहा था । वे अपनी लीलाओं पर अपने ही आप मुग्ध थे । बहुत कुछ खेल बूढ़ कर वे एक सघन लता कुज में कुछ देर आराम करने के लिये बैठ गये । उनका बैठना ही था कि उधर आते हुये महाराज नारदमुनि पर उनकी दृष्टि पड़ी—वे उठ पडे हुये । दोनों ने

उन्हें भक्ति पूर्वक प्रणाम किया । “राम लक्ष्मण की तरह तुम्हारा वश निरव में व्याप्त हो” नारद ने उन्हें आशीर्वाद दिया ।

राम लक्ष्मण कौन हैं महाराज ।” उन्होंने उत्सुकता से पूछा ।

“क्या तुम नहीं जानते कुमार ?”

“नहीं तो देव । हम नहीं जानते, क्या आप बता सकेंगे वे कौन हैं ?” नम्रता से कुमारों ने पूछा ।

‘हा क्यों नहीं बताऊंगा कुमार ।’ नारद ने सारा हाल कुमारों से कह सुनाया वे बोले—तुम्हारी मा का परित्याग रामने केवल अपवाद से ही कर दिया था । ‘केवल अपवाद से ?’

‘हा’ ।

“बिना परीक्षा लिये ?”

‘हा’

इस प्रकार नारद का उत्तर सुनते ही कुमार क्रोधित हो उठे । नेत्र लाल हो गये । उन्होंने होंठ चबाकर कहा—अच्छा हम भी देखेंगे वे कितने बहादुर हैं । हमारी मा का अपमान । ये उसी समय उठकर नगर की ओर चल पडे । उन्होंने प्रतिज्ञा करली कि हम अपनी मा के अपमान का बदला उन से अवश्य लेंगे । चाहे कुछ भी क्यों न हो ।

### प्रश्नावलि

१—लपकुश कौन थे ?

२—इनका जन्म कहा हुआ ?

३—इनका पालन पोषण किसने किया ।



१३२ शांति से प्रत्येक स्थान पर विजय प्राप्त होती है।

४—लवकुश और नारद का क्या घातालाप हुआ ?

५—नारद कौन होता है ?

## राम लक्ष्मण और लवकुश का युद्ध

दि० जैत्र कथाष्टक परित्यक्ता से—

( ले० प० राजेन्द्रकुमार जैन 'कुमरेरा' )

सीता बैठी हुई शुद्ध सोच रही थी, पास ही उनकी भाभिय हसी मञ्जाक कर रही थी—कुमार सीधे वहाँ जा पहुँचे और जरा क्रोध भरे स्वर में बोले—मा ! क्या राम ने तुम्हारा अपमान किया है ?”

“नहीं तो” सीता ने व्यथित स्वर में कहा।

‘क्यों उड़ोने तुम्हारा परित्याग नहीं किया ?’

‘हा’ सीता के मुँह से निकल गया।’

“तो हम उनमें इस अपमान का बदला अवश्य लेंगे मा, ’

‘नहीं घेटा, यह क्या कह रहे हो, इसमें मेरा अपमान क्या है।’ रहने दो मा ! हम समझ गये, तुम हमें युद्ध से रोक चाहती हो। लेकिन अब हम अवश्य ही उनसे बदला लेकर रहें चाहे कुछ हो।’

वे यह कह कर बाहर चले गये।

मामा से उड़ोने सात हाल कह सुनाया। युद्ध का निरर्थक हो गया। कुमार बदला लेने के लिये प्रतिक्षण व्यथ हो रहे थे सरयू के किनारे दोनों ओर की सेनायें आहटों, युद्ध प्रारं

गया । मारकाट खून खचर होने लगा, लेकिन परिणाम कुछ ही दोनों ओर के अविनायकों के शस्त्र बेकार से हो रहे थे । किसी का वार किसी पर भी नहीं चलता था ।

लक्ष्मण युद्ध करते-थकता गया । राम विचार सागर में गोते लगाने लगे । हम बलभद्र नारायण नहीं हैं शायद वे ही हों, सीलिये तो हमारा वार काम नहीं देता ।” ये काप गये ।

लक्ष्मण ने अंतिम शस्त्र चक्र चलाना चाहा । उसने उसे हाथ में उठा लिया, वह चलाना ही चाहता था कि —

“ठहरो” किसी के मधुर स्वर उसके कान में पड़े । उसने आँख उठा कर देखा । सामने से नारद महाराज आ रहे थे । लक्ष्मण ने उन्हें प्रणाम किया । और व्यक्ति स्वर में बोला—  
देव आज शस्त्र काम नहीं करते, क्या बात है । मैं तो बड़ा परेशान हूँ ।’

“हा लक्ष्मणजी, आज शस्त्र काम नहीं देंगे ।’

“क्यों ?” जानते हो ये कौन हैं ? जिन से तुम युद्ध कर रहे हो ।

“नहीं

यह तुम्हारे भतीज, राम के पुत्र लज कुश हैं समझे । नारद ने आप्र मारते हुये कहा—

लज-कुश मेरे पुत्र ? राम ने शस्त्र फेंक दिये । वे हर्षानुल होकर पुत्रों की ओर दौड़े, युद्ध बंद हो गया ।

सीता विमान में बैठी हुई पुत्रों की धीरता देख रही थी । वह उनके कौशल पर मगधुली राम को पुत्रों की ओर आते देख कर,

अपने स्थान पर चली गई । जब लव और कुश ने देखा कि राम उर्हीं की ओर आ रहे हैं तो उ होने भी शस्त्र छोड़ दिये और दौड़ कर मिता के चरणों में गिर पड़े । राम ने उठा कर उन्हें हृदय से लगा लिया । उनकी आँसों से दो बूंद आसू ढलकर पानी पर गिर पड़े ।

चारों ओर आनन्द मनाया जाने लगा । दोनों दल मिलकर एक हो गये । तब बड़े प्रेम से राजपुत्रों को राजधानी ले चले । पुत्रों की खुशी में दरवार लगा । महाराज राम ने बड़े आदर से अपने पास बैठाया ।

लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान, बज्रजघ आदि सब अपने स्थान पर बैठ गये । उन सब की एक ही इच्छा थी । सीता को युलाने के लिये महाराज से आशा प्राप्त करना, सब का इशारा पाकर सुग्रीव ने आकर कहा । महाराज । अब भी महारानी सीता को युलाना उचित है ।

सुग्रीव । मुझे सीता पर पहले कोई सन्देह नहीं था, परन्तु जिस कारण उसका परित्याग किया था, वही कारण आज भी सामने है । यदि किसी उपाय से उसकी पवित्रता प्रगट हो जावे तब ही उसका यहाँ आना उचित होगा ।

यह तो आपके ऊपर निर्भर है, महाराज चाहें तो उनकी परीक्षा ले सकते हैं ।

परीक्षा, यह ठीक है, तब तुम सीता को यहाँ ले आ सकते हो ।

जो आज्ञा देव । सुभीष उसी समय परित्यक्ता सीता को लेने चले गये दरवार बरज्जारत हो गया ।

आज सीता की परीक्षा है । नगर के समस्त नर नारी उस बड़े से अग्नि कुंड के समीप एकत्रित होन लगे, अग्नि कुंड की प्रज्वलित लपटों को देख कर सभी का हृदय काप रहा था बच्चे रो रहे थे और युवतिया भयभीत—

यहां राम लक्ष्मण सभी व्याकुल प्रतीत होते थे, पर तु सीता बड़ी शांति और धैर्य से प्रभ का ध्यान कर रही थी । उसके हृदय पर तनिक भी भय या मत्तीनता की रेखा न थी । सीता ध्यान समाप्त कर खड़ी हो गई । आप अग्नि की ओर देखकर बोली “अग्नि देव । यदि मैंने रामचंद्रजी के सिवाय सोते, जागते, उठते-बैठते, मन से पचन से, काय से किसी अन्य पुरुष से पति भाव किया हो तो मेरे इस अधम शरीर को भस्म कर दो’ ऐसा कहकर हमते हसते अग्नि कुंड में कूद पड़ी, सब लोग वेदना से चीख उठे । परन्तु एक ही क्षण में उन लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उ-होंने देखा कि अग्नि कुंड की जगह निर्मल जल परिपूर्ण सुन्दर सरोवर और कमल सिंहासन पर सीता बैठी हुई है, चारों ओर आकाश से सीता की जय ध्वनि गुंज उठी ।

और क्या किया ?

अब सीता की पवित्रता में किसी को स्पन्देह न रहा था । रामचंद्र भी प्रेम से सीता के पास आ पहुँचे और स्नेह मरे स्वर में बोले सीते । आप साक्षान् देवी हैं, आपका परित्याग कर

१३६ पौरुष शरणागत की रक्षा करने से प्रवृत्त होता है ।

---

सातव में मैंने बड़ी भूल की थी ।

‘ नहीं नाथ । आप यह क्या कह रहे हैं, सीता ने बात काटकर कहा—यह आपकी भूल न थी, यह था मेरे किसी पूर्वोपार्जित कर्म का परिणाम ।

‘ अब घर चलिये सीत ।

‘ नहीं देव । अब यह परित्यक्ता कभी घर न जा सकेगी ।  
“क्यों” ?

इस क्यो का उत्तर सीता ने अपने केशों का लोच करके दिया । राम, लक्ष्मण, सुग्रीव आदि सब ठगे से रह गये । वह आजिका होगई । परित्यक्ता सीताने अब अपने जीवन का सार्थक बनाने का उद्यम उपक्रम कर लिया ।

### प्रश्नानुली

- (१) लक्ष्मण और राम लक्ष्मण के युद्ध का वर्णन करो ।
- (२) नारद ने राम लक्ष्मण से क्या कहा ।
- (३) युद्ध बंद होने पर लक्ष्मण और सुग्रीव को राम कहा ले गये ?
- (४) सीता की अग्नि परीक्षा का वर्णन करो ।
- (५) सीता ने अग्नि में प्रवेश करते समय क्या परीक्षा की थी ।
- (६) अग्नि परीक्षा के बाद सीता राम के महल में क्यों न आई ?



## सोलह कारण भावना

( श्री भूपरदास कृत )

दर्शन विद्युद्धि भावना

( १ )

घोषार्द्र—घाठ दोष मद आठ मलीन, छद्म अनायतन राठता तीन ।  
ये पचीस मल बर्जित होय, दर्श विद्युद्धि भावना सोय ॥

विनय सपन्नता भावना

( २ )

रत्नप्रय घारी मुनिराय, दर्शन ज्ञान चरित समुदाय ।  
इन की विनय विषय परकीन, दुतिय भावना सो अमकीन ॥

शील प्रवेष्टनविचार

( ३ )

शील धारि धारै समचेत, सहस्र अठारह अंग सनेत ।  
अतीचार नहि लागे जहा, दुतिय भावना कहिये सहा ॥

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग

( ४ )

आगम कथित अरथ अत्रधार, यथा शक्ति निज वृधि अनुसार ।  
करै निरंतर ज्ञान अभ्यास, दुतिय भावना कहिये तास ॥

सदेग भावना

( ५ )

दोहा—धर्म धर्म के पल विपै, परतैं मीति विरोध ।

यही भावना पंचमी, निर्यो जिनानाम इत्य ॥

## शक्तितस्त्र्याग भावना

( ६ )

चीपाई—ओपधि अभय ज्ञान आहार महादान ये चार प्रका  
शक्ति समान सदा निरहै, छठी भावना धारक बहै ॥

## शक्तितस्तप भावना

( ७ )

अनशन आदि मुक्ति दातार, उत्तम तप चारह परकार ।  
बल अनुसार करै जा कोय, सो सातमी भावना होय ॥

## साधु समाधि भावना

( ८ )

यति बग को कारण पाय, विघन होत जो करै सहाय ।  
साधु समाधि कहाये सोय, यही भावना अष्टम होय ॥

## वैय्यावृत्त्य भावना

( ९ )

दशविधि साधु जिनागम कहे, पथ पीडित रागादिक गहे ।  
तिनकी जो सेवा सतकार, यही भावना नौमी सार ॥

## अरहत भक्ति भावना

( १० )

परम पूय आत्म अरहत, अतुल अनत चतुष्टय बत ।  
तिनकी युति नित पूजा भाव, दशमी भावना भव जल नाव ॥

आचार्य भक्ति भावना

( ११ )

जिनवर कथित अर्थ अरुतार, रचना करें अनेक प्रकार ।  
आचारज की भक्ति विधान, एकादशमि भावना जान ॥

बहुश्रुतिवन्त भक्ति भावना

( १० )

विद्यादायक विद्यालीन, गुण गरिष्ठ पाठक परवीन ।  
तिनके चरण सदा धित रहै, बहु श्रुति भक्ति बारमी यहै ॥

प्रवचन भक्ति भावना

( १३ )

भगवत भाषिन अथ अनूप, गणधर प्रथित प्रथ स्वरूप ।  
तहा भक्ति बरतै अमलान, प्रवचन भक्ति तेरमी जान ॥

षडाग्र्यकापनिहाणि भावना

( १४ )

षट् आग्र्यक क्रिया विधान तिन की कयहू न करिये हान ।  
साधधान बरतै धिर चित्त, सो चौदहवीं परम पत्रित ॥

मार्ग प्रभावना भावना

( १५ )

कर जप तप पूजा त्रत भाष, प्रगट करे जिन धम प्रभाव ।  
सोई मार्ग परभाषना, यही पचदशमी भावना ॥



## वात्सल्य भावना

१६ )

चार प्रकार सब सों प्रीति, राखै गाय वत्स की रीति ।

यह सोलहवीं सब सुखदान, प्रवचन वात्सल्य अभिधान ॥

दोहा—सोलह कारण भावना, परम पुण्य को खेत ।

भिन्न भिन्न अरु सोलहों, तीर्थकर पददेत ॥

### प्रश्नावलि

- (१) इन सोलह कारण भावना के रचयिता कौन हैं ? उनका सक्षिप्त परिचय अपने सरल शब्दों में बताओ ।
- (२) सोलहकारण भावनाओं के नाम बताओ । इनका महत्व क्या है ?
- (३) दशन विशुद्धि भावना का स्वरूप समझाओ । इस भावना का कोई विशेष महत्व है क्या, यदि है तो क्या और क्यों ?
- (४) रत्नत्रय किसे कहते हैं ? विनय सपन्नता भावना का लक्षण बताइये ।
- (५) शील धृतेष्वनतिचार भावना किसे कहते हैं ?
- (६) अतिचार से आप क्या समझते हैं ?
- (७) शील के अठारह हजार भेद कैसे होते हैं ?
- (८) अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावना का स्वरूप समझाओ ।
- (९) संवेग भावना किसे कहते हैं ?
- (१०) छठी भावना का क्या नाम है, उसका स्वरूप बताओ ।
- (११) दान कितने प्रकार का होता है और कौन कौनसा ?

१२) तप कितने प्रकार का होता है ? तप किम हद तक करना चाहिये ?

(१३) साधु समाधि भावना किसे कहते हैं ?

(१४) वैयाकृत्य से आप क्या समझते हैं ?

(१५) दश प्रकार के साध कौन से होते हैं ?

(१६) सेवा का महत्व बताओ ।

(१७) अरहत भक्ति भावना का स्वरूप बताओ ।

(१८) अरहत कौन होते हैं ? और उनकी भक्ति से हमें क्या लाभ होता है ?

(१९) आचार्य कौन होते हैं ? उनकी भक्ति कैसे होती है और उससे हमें क्या लाभ होता है ?

(२०) बहुभुतगतभक्ति किसे कहते हैं ? बहुश्रुतगत कौन होते हैं, उनके मुख्य गुण कौन ० से हैं ।

(२१) प्रवचन से आप क्या समझते हैं ? प्रवचन का सही भक्ति क्या है ?

(२२) मुनियों के पट् आवश्यक कौन से हैं और प्रहायों ने कौन से ?

(२३) मार्गप्रभावना किसे कहते हैं ?

(२४) सही प्रभावना कैसे हो सकती है ?

(२५) सही प्रभावना के कुछ साधन सुझाओ ?

(२६) वात्सल्य किसे कहते हैं ?

(२७) परस्पर में वात्सल्य कैसे बढ़ाया जा सकता है ?

(२८) अतिम शोहे का अर्थ सरल शब्दों में बताओ ।

## दक्षिण भारत के प्रथम सम्राट् श्री बाहुबलि स्वामी

भगवान् शृपभदेव के पुत्र बाहुबलि दक्षिण भारत के प्रथम सम्राट् थे, उन्होंने अपने पिता द्वारा सुरम्य देश का शासक हाना स्वीकार किया था । वह बड़े बलशाली, तेजस्वी और स्वत्याभिमानी महापुरुष थे । उनके प्रत्येक अंग से अपूर्व तेज, वरसाद और वीरत्व टपकता था । वह जिनसे दृढ़ प्राणी थे, उनसे ही स्वतः प्रता के उपासक । वह अपने सुन्दर थे कि उन्हें ससार ने प्रथम काम देव माना । उनकी राजधानी पोदनपुर नगर में थी, वह प्रजा का नीति पूज्य पालन करते थे । अपने समय के सुन्दर और श्रेष्ठ शासक को पाकर प्रजा अतीव संतुष्ट रहती थी । उनकी पवित्र स्मृतिया आज भी प्रजा के हृदय मंदिर में सम्मान को प्राप्त हैं । यही कारण है कि दक्षिण में आज भी वह "कामदेव" और "गोमट्ट" नाम से पुकारे जाते हैं और वह निस्सन्देह कामदेव ही थे, परन्तु आश्चर्यतो यह है कि कामदेव होते हुवे भी वे मोह समता और ससार के विषय भोगों से परे थे ।

मगधान्द का समय था सम्राट् बाहुबलि राज्य सिंहासन पर विराजमान थे । इसी समय भरत चक्रवर्ती के एक दूत ने आकर उन्हें समाचार सुनाया और कहा "महाराज । भरत चक्रवर्ती ने पृथ्वी जीत ली है उन्हें अपने चक्रवर्ति पद को सार्थक बनाने के लिये यह कसूरी है कि आप उनकी आन मान लें । पर स्वत्या

भिमानी सम्राट् ने यह बात आत्माभिमान व विरुद्ध समझी और भरत महाराज को युद्ध करने के लिये निमंत्रण भेच दिया । बाहुबलि का सवाद सुनकर चमरर्ति का हृदय क्रोध से कापने लगा और कहने लगा कि भारत विजयी चमरर्ति का प्रभुत्व स्वीकार नहीं करना चाहता तो फिर हर्म युद्ध करना ही होगा । उस क्या था चतुरगी सेना लेकर पौदनपुर जा पहुँचा । उधर बाहुबलि भी शस्त्राग्न से सुसज्जित हो सेना सहित रण में आ दटे । दोनों शासकों की आशा की ही देरी थी कि अनेक नर मुण्ड कट कर भूमि पर गिरते दिखाई दत किंतु दोनों ओर के राजमंत्रियों के हृदयों में यह सद्ज्ञान जाग्रत हुआ कि ये दोनों नर शार्दूल, परम शरीरी, अवेध्य और मोक्षगामी हैं, इनका तो विगड़ना ही क्या है, अनेक सैनिक वधा मारे जायेंगे । अत इस महान् हिंसा का रोकना जाना आवश्यक है । यह उचित होगा कि दोनों महापुरुष ही परस्पर युद्ध करके अपनी शक्ति का निणय करलें ।

मंत्रियों की सलाह ठीक थी, दोनों ही नर सिंहों में भाग्य परीक्षा आरम्भ हो गई और महाबलि बाहुबलि न भरत को नेत्र युद्ध और जल युद्ध में पराजित कर दिया । मंत्रियों के पहले निश्चय के अनुसार दोनों भाइयों में देवताओं को भी चकित कर देने वाला मल्ल युद्ध आरम्भ हो गया । बाहुबलि को पीरुप महान् था, भरत उसे पा न सके । अपने इस अपमान से वह इतने द्रोहित हुये कि उन्होंने अपने भाई पर चक्रवर्त्न चला दिया

परन्तु चक्रवर्त्तन बाहुबलि का बुद्ध विगाड़ ७ सका, ये परम शरीर थे । हा भरत चक्रवर्त्ति की म्थाथ परता को देखकर महा पराक्रम बाहुबलि का हृदय सासारिक वासनाओं से विरल हो गया ।

वह विचारने लगे “अहो ! ससार में अनेक कुकृत्य, अयत्न और पापों की उत्पन्न करने वाली इस राज्य लक्ष्मी को धिक्का है । वैरया के समान यह राज्य लक्ष्मी किम्पाक फल सदरा है जिस प्रकार विपफल देखने में सुन्दर, चखने में भीठे, किण्वरिणाम में प्राण घातक होते हैं; वैसे ही इन्द्रिय भोग भोगों समय ही अच्छे जान पड़ते हैं, किन्तु ये बड़े दुःख दायक हैं । इस प्रकार वैराग्य भावना को चिन्तन करते हुवे राज्य लक्ष्मी को ठुकरा कर सम्राट् बाहुबलि महायोगी के रूप में दिगम्ब मुनि होगये । भरत उन को नमस्कार कर अपनी राजधानि अयोध्या चले आये । बाहुबलि के पुत्र महाबल राज करते हुवे पोदनपुर की प्रजा का पालन करने लगे ।

वह योगी बाहुबलि अपने आत्म ध्यान में लीन हा भोतपरचरण करने लगे । कायोत्सर्ग शावमुद्रा में ध्यानारु होगये । भीष्म ऋतु की प्रचण्ड ज्वालानें, शीत काल की शीतलता तथा ऋतु की मूसलाधार वर्षा, उनके शरीर पर पड़ रहीं थीं । उनके शरीर क सहार सर्वो ने निवास बिल बना लिये थे । वे उनके समीप कीड़ियों ने घाबिया घनाली थीं, लतायें उनके शरीर पर चढ़ आइ थीं, परन्तु वह महा योगी निर्भय थे । भोर तपरचरण

के प्रभाव से उनके शरीर में अनेक शक्तियों ने निवास स्थान बना लिया था ।

उधर भरत महाराज को भी भाई के शुभ दशनों की इच्छा हुई । जिस दिन राजर्षि बाहुबलि का व्रत पूर्ण होने को था उसी दिन चक्रवर्ति समस्त राज परिवार सहित पोदनपुर के बाहर उद्यान में जा पहुँचे । बड़े प्रेम और भक्ति भाव से उन्होंने राजर्षि की वन्दना की । बाहुबलि निराकुल हुवे । उसी समय ध्यान की प्रचण्ड व्याला में कम शत्रुओं को भस्म कर योगिराज बाहुबलि ने वेद्यत ज्ञान को प्राप्त किया देवों ने उत्सव मनाया भरत महाराज ने केवलज्ञान की पूजा की । भगवान बाहुबलि ने ससार में भटकने वाले प्राणियों को वर्म अमृत का पान कराया । जगद् जगद् देश में विहार करके सत्य, सयम शील, दया, प्रेम और अहिंसा का प्रचार किया । अन्त में विहार करते हुवे बाहुबलि स्वामी कैलाश पर्वत पर पहुँचे, वहा पर ३ होने पूर्ण ध्यान के बल से मातृ लक्ष्मी को प्राप्त किया ।

—प० भैयालाल जैन, कायतीर्थ "दि० जैन कथाङ्क"

### प्रश्नावलि

- (१) बाहुबलि कौन थे ? उनके और क्या २ नाम थे ?
- (२) बाहुबलि कैसे राजा थे और उनमें क्या विशेष गुण थे ?
- (३) भरत चक्रवर्ति का दूत क्या सदेश लेकर बाहुबलिजी के

पास गया ?

- (४) क्या बाहुबलिजी ने उस मंदिर को खींचा कर लिया यदि नहीं तो क्या उत्तर दिया और क्या किया ?
- (५) मंत्रियों ने युद्ध किस विचार से नहीं होने दिया ? युद्ध कब बदल रहने क्या सलाह दी ?
- (६) मलयुद्ध किसे कहते हैं ?
- (७) भारत और बाहुबलि में से युद्ध में कौन जीता और क्यों ?
- (८) बाहुबलिजी ने राज पाट को क्यों त्याग दिया ?
- (९) बाहुबलिजी ने कैसे तपश्चरण किया और उनका तपश्चरण क्यों प्रसिद्ध है ?
- (१०) बाहुबलिजी ने मुनि अवस्था में लोगों का क्या कल्याण किया और अंत में मोक्ष कहा से पाई ?
- (११) इस चरित्र से क्या शिक्षा मिलती है ?

### सद् ग्रहस्थ

संसार में आदर पाने के लिये तथा अपने जीवन को सफल और उपयोगी बनाने के लिये एक मनुष्य को गुणवान होना चाहिये, सर्वत्र ही गुणों का आदर होता है। नीचे सलीप से ऐसे कुछ गुणों का वर्णन किया जाता है कि जिनको यथायोग्य धारण करके एक मनुष्य सद्ग्रहस्थ कहलाने का अधिकारी हो सकता है।

एक सद्ग्रहस्थ चाय पुरक धन उपानन किया करता है।

सदाचार रूप उपायों से जो धन कमाया जाता है, वह न्याय से कमाया हुआ धन कहलाता है। वह इस लोक और परलोक दोनों में सुख के देने वाला होता है। उसको अपनी इच्छानुसार खर्च करने में या किसी को देने में कोई भय नहीं होता। निश्चय कामों से कमाया धन बहुत दिनों तक नहीं टिकता, जो धोरी, मूठ घेंटेमानी आदि से धन कमाना है, राजा भी उसे दण्ड देता है, लोक में उसका अपमान होता है, वह सदा भय भीन रहता है उसे नाना प्रकार के कष्ट तथा वेदनायें भुगतनी पड़ती हैं। न्याय से धन कमाने वाला अपनी आवश्यकताओं को कम रखता है, वह अपना खर्च अपनी आमदनी के अनुसार करता है, व्यर्थ खर्च नहीं करता। वह विवाह शादी में मूठी वाह वाह के लिये ठपका नहीं लुटाता, बसछा जीवन सादा और सतोषमय होता है। वह सबके साथ प्रेम पूर्वक व्यवहार करता है, किसी को ठगता नहीं, लूटता नहीं, विश्वासघात नहीं करता, घूस लेता नहीं, जालसाजी नहीं करता, मदकपायी होता है।

एक सद्ब्रह्मस्थ सद्गुणों का उपासक होता है, सदाचारी सज्जन होता है, उदार हृदय होता है, हरएक कार्य चतुराई से सावधानता पूर्वक करता है। गुणीजनों का भक्त होता है, गुणीजनों को देखा उसने हृदय में दर्प और प्रेम का स्रोत समझ आता है, गुरुजनों की वह विनय करता है, यथायोग्य उनकी सेवा, सुश्रुषा तथा वैयावृत्य करने के लिये तैयार रहता है।



सबके साथ प्रेम पूवक रहता है, घणा किसी से नहीं करता, सबका यथायोग्य आदर सत्कार करने से कभी नहीं चूकता ।

सद्गृहस्थ मिष्ट भाषी, सत्यवादी होता है । वह अप्रिय कटुक और कठोर शब्द अपने मुल से नहीं कूता दूसरों की निन्दा नहीं करता निन्दा करना बड़ा पाप है । जो दूसरों का निन्दा करता है वह नीच गोत्र कम का बध करता है, उसका अपयश सर्वत्र फैल जाता है । हितमित्त वचन कहने वाले का सुवश होता है, उसका कोई भी शत्रु नहीं होता ।

सद्गृहस्थ को चाहिये कि धर्म, अथ और काम इन तीनों पुरुषार्थों का साधन यथायोग्य रीति से करे, समय पर धर्म का पालन करे, समय पर अ्याय नीति पूरक परिश्रम करके धन कमाये, अपने कमाये हुये धन से योग्य भागों का भोगे, अपने कुटुम्ब का पालन पोषण करे । अपनी सत्गान को शिक्षित बनावे, सदाचारी बनावे, चारों प्रकार के दान में वित्त समान रूपया देवे । न तो कजूस बन और नहीं ऐसा व्यर्थ व्यय करे कि जिससे धन लुटाकर रक ही होजावे । इन पुरुषार्थों का सेवन इस प्रकार किया जावे कि जिससे एक के सेवन करते हुये दूसरों के सेवन में बाधा न आवे ।

एक सद्गृहस्थ सदाचारिणी, दयाल, धर्मात्मा, पतिव्रता और सुरीला स्त्री के साथ विवाह करता है जो स्त्री पति से प्रेम पूवक व्यवहार करती है, पति की आज्ञानुसार चलती है अपनी

सन्तान का भली भाँति पालन पोषण करती है वही गहिणी कहलाती है, वनी धर्म पत्नी है । ऐसी स्त्री घर को स्वर्ग के समान बनाये रखती है, वे आप सुखी होती हैं और अपने पति तथा अपने कुटुम्ब के जीवन को सुखी बना सकती हैं ।

सद्ग्रहस्थ को ऐसे नगर या स्थान में रहना चाहिये जहाँ जिनमंदिर, शास्त्र भण्डार, वाचनालय, पाठशाला, औषधालय आदि हो, सज्जन धर्मात्मा पुण्यों की सत्संगति प्राप्त हो, जज्ञ धर्मवृद्धि तथा अपने कुटुम्ब का अच्छी तरह निर्वाह करने के लिये आवश्यक धन कमाने का साधन भी हों । गृहस्थ का रहने सहने का मकान भी ऐसा होना चाहिये जिसमें हर ऋतु में अच्छी तरह आराम के साथ रह सकें । जो हवादार, साफ हो, जिसमें रोशनी भी आती हो । जिसमें धर्मध्यान, स्वाध्याय सामायिक आदि सुभीते के साथ की जा सकें, इनके करने में कोई बाधा आने न पावे ।

मकान में बन्दू न आवे, मकान की भोरिया, तालिया और टट्टी आदि सब धुली धुलाई और साफ होनी चाहियें ।

सद्ग्रहस्थ को लज्जावान होता चाहिये उसे उद्धतता का व्यवहार नहीं करना चाहिये । अपने ऐश्वर्य, वस्त्र, देश, काल और कुल के अनुसार ही वस्त्राभूषण आदि पहनने चाहियें, निलज्ज होकर कोई ऐसे निंद्य कार्य नहीं करने चाहियें जिससे उसकी जाति, धर्म, कुल और देश की प्रतिष्ठा भंग होती हो तथा

गीरव नष्ट होवे। वह कोई लम्बा लेन देन विवाह शादी में नहीं करता जो चद्रतता से भरा हो और जो दूसरों के लिये एक दुग देने वाला रिवाज बन जावे।

सद्महस्य सदा योग्य आहार विहार किया करता है। निर्दोष आहार करता है, रात्रि को भोजन नहीं करता छना हुआ जल काम में लाता है, अमृत्य भक्षण का त्यागी होता है। मास, मदिरा, मधु आदि का सेवन नहीं करता। अज्ञान को मलिन करने वाली तथा चारित्र को भ्रष्ट करने वाली सभा सोसायटी में नहीं जाता। वह अपना प्रत्येक कार्य समय पर करता है—वह कहीं ऐसे स्थान पर जाना पसन्द नहीं करता जहा उसने धर्म साधन में रुकावट पडती है, वह धर्म को मुख्य समझता है, अन्य सब बातों को गौण।

सद्महस्य सदा आय सगति में ही रहना पसन्द करता है, सदाचारी सज्जन धर्मात्मा पुरुषों की सगति में ही वह रहता है। जगरी, धूर्त, व्यभिचारी, निर्लज्ज, दुष्ट व्यसनी पुरुषों की सगति से सदा वचना चाहिये। सत्सगति से ज्ञान और आचरण की वृद्धि होता है और कुमसगति से अरनी वृद्धि मलिन होती है और हानि होती है।

सद्महस्य दीर्घ दर्शी होता है। विचारवान और विवेकशील होता है, आगे दूर तक की बात को सोचता है। प्रत्येक काम को उसके अच्छे बुरे तरीके को विचार कर करता है।

सद्गुरुद्वय दूसरे क किये हुवे उपकार को भूलता नहीं, कृतान नहीं होता अपने उपकारी का भला चिन्तन करता है। सद्गुरुद्वय सयमी होता है। उसे अपनी इन्द्रियों पर काबू होता है, उसके कपाय मद होत हैं वह आप कष्ट उठा लेवेगा, परन्तु दूसरों को दुःख देकर राजी नहीं होता, दूसरों का तो भला ही चाहता है।

सद्गुरुद्वय की धम में अटल श्रद्धा होती है, वह धम को विसारता नहीं। शास्त्र सुनता है पढ़ता है औरों को सुनाता है। धमप्रभावना के कारणों के जुटाने में तत्पर रहता है। स्वयं धर्म साधन करता है, अपनी बद्धि को निर्मल रखता है, दूसरों को धर्म साधन के लिये प्रेरणा करता है। वह दयालु होता है, दीन दुःखी जीवों को देण्डन पर करुणा करता है, करुणा बुद्धि से दान देता है, दया धम का मूल है, जिसके हृदय में दया नहीं वह मनुष्य नहीं। अपने शत्रु पर भी दया करना ही श्रेष्ठ है।

सद्गुरुद्वय सदा पाप से डरता है, वह सप्त व्यसन का सेवन नहीं करता। दिसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इन पाच पापों से डरता रहता है, विषय कपाय को अपने लिये हानिकारक जान उनका त्याग करता है, वह समझता है कि धर्म रूपी धन के चुराने वाले लुटेरे चोर हैं, जिस प्रकार भी बने इनसे अपने धर्म धन की रक्षा करनी ही योग्य है। सद्गुरुद्वय निभय, बलवान चारित्रवान श्रद्धालु और ज्ञानवान होता है, अपने गृह कार्य म कुशल, रंगार, सहजशील और विवेकी तथा परोपकारी होता है।

मैत्री, प्रमोद, माध्यस्थ और करुणा भावना क माने वाला होता है। आपत्ति आने पर दारिद्र्य आजाने पर, रोग होजाने पर वह कायर नहीं होता, कर्मों का फल समय उह सन दुःख सक्ती को वीरता के साथ सह्य सहन करता है।

पाठ—

### मंगल कामना

॥ स्वप्नरा छन्द ॥

होये सारी प्रना को सुख, बलपुत हो धर्मधारी नरेशा ।  
होये वर्षा समय पै, तिल भर न रहे व्याधियों का अदेशा ॥  
होवे चोरी न जारी, सुममय वरतै हो न दुष्काल मारी ।  
सारे ही देश धारै, जिनवर वृष को जो सदा गौरयकारी ॥  
दोहा-घाति कर्म जिन नाश कर, पायो केरल राज ।

शान्ति करै सो जगत में, वृषभादिकु जिनराज ॥

मन्दा क्रान्ता

शास्त्रों का हो पठन सुखदा, लाभ सत्सगती का ।

सद्गुणों के सुगुण कहके, दोष टाकू सभी का ॥

बोलू प्यारे वचन हितके, आपको रूप ध्याऊँ ।

तौलों मेऊ धरन जिनके, मोच जौलों न पाऊ ॥

प्रश्नावलि

१-इस पाठ में जगत के कल्याण के लिये क्या भावनायें बनाई हैं ?

२-निज हित के लिये हमें क्या करना चाहिये किन २ बातों को ग्रहण करना चाहिये ?

३-तीनों छन्दों का अर्थ जुदा ० अपने सरल शब्दों में समझाओ ।

# ज्ञान वृद्धि के लिये अमूल्य भंड

पाठ्यक्रम पुस्तकें	व्याथ सूत्र भक्तोमर	१)
शेष्ठावली प्रथम भाग	१)	जैन तीर्थ और बनही यात्रा ॥१॥
॥ द्वितीय भाग	१-)	सुशीला उपन्यास २)
॥ तृतीय भाग	१-)	पतितोद्धारक जैनधर्म ११)
॥ चतुर्थ भाग	११)	पूजन पाठ विषयक
बोध जैनधर्म प्रथमभाग	१-॥॥	नित्य नियम पूजा १)
॥ द्वितीय भाग	२-)	आलोचना पाठ -१॥॥
॥ तृतीय भाग	३-॥॥	निर्वाण काण्ड -१)
दाला साथ	११)	आलोचना पाठ -१)
संपद साथ	११)	पंच कल्याणक साथ १)
करण्ड भावकाचार साथ	११)	तेरह द्वीप का नकरा -१॥॥
ध माला	१)	सिद्ध क्षेत्र पूजा २११)
शास्त्र सटीक	२)	सोन्नह कारण दीपक १११)
शास्त्र मूल	-१॥॥	समवशरख विधान १)
धर्म प्रकाश	११)	भाषा पूजा संपद १)
धर्म सिद्धान्त	१-)	मर्गेपयोगी साहित्य
सिद्धान्त प्रवेशिका	१-३)	
नार्थ सिद्धोपाय	१)	आत्मिक मनोरिज्ञान ११)
पाठारली	११-२)	अष्ट पाहुड हिन्दी टीका १११)
शिवाष्टश	१-२)	कथा कहानी और संस्मरण १)